युगधर्म

रचयिता—

श्री पं० रामरेखा प्रसाद शर्मा,

शिवाला, बनारस ।

प्रकाशक—

श्री रामावतार राम भदानी,

टिकारी रोड, गया ।

प्रथमवार २००० | माघ शुक्ल २००६ | प्रचारार्थ मूल्य १।)

निवेदन

युगधर्म को जो अभेद बुद्धि से पढ़ेंगे उनको यथेष्ठ तत्वों का ज्ञान होगा। भेद बुद्धि अविद्या का कारण है, इससे (भेद बुद्धि से) सदा बचना चाहिये। राम, कृष्ण, शंकर आदि में तथा वर्णाश्रमों में भेद नहीं समझना चाहिये। भगवान श्रीकृष्ण, महादेव जी के साथ अपनी अभिन्नता प्रकट करते हुए श्रीमुख से कहते हैं—त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमखिलं मया। मत्तो विभिन्न मात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर ।४७। योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्त्वं ज्ञातु-मिहार्हसि ।४८। अविद्यामोहितात्मान: पुरुषा भिन्नदर्शिनः। वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर ।४९। विष्णु पुराण। अंश ५ अ ३३।

श्री भगवान बोले, हे शङ्कर आप अपने को मुझसे सर्वथा अभिन्न देखें ।४७। आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो मैं हूँ सो आप हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत देव असुर और मनुष्य आदि कोई भी मुझसे भिन्न नहीं हैं ।४८। हे हर जिन लोगों का चित्त अविद्या से मोहित है वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनों में भेद देखते और बतलाते हैं। यथेष्ठ में कोई भेद नहीं है। ४९।

जिन चराचरनियन्ता श्री हरि की प्रेरणा से मैंने इस ओर बढ़ने का दुःसाहस किया है। उनसे क्षमा मांगता हुआ उन लीलामय की यह लीला (युगधर्म) उन्हीं के चरण कमलों में समर्पित करता हूँ।

विनीत :

सम्पादक

विषय सूची

भूमिका

पूर्वकाल में यह भारतवर्ष विद्याबुद्धि सम्पन्न सर्व गुणों की खान था। जिस समय इस देश की कीर्तिपताका भूमण्डल के चारों ओर फहरा रही थी, उस समय कानों से सुनी कीर्तियों को नेत्रों से देखने के निमित्त अनेक देशों के यात्री यहाँ आते और अपने नेत्रों को सफल कर यहाँ की अतुलनीय कीर्ति को अपनी भाषा के ग्रन्थों में वर्णन करते थे। वे ग्रन्थ आजतक इस देश की गुरुता और कीर्ति का स्मरण कराते हैं। जिस समय यह सब विश्व अज्ञानांधकार में मग्न था पृथ्वी के अधिकांश में असभ्यता पूर्ण हो रही थी, उस समय यही देश धर्म आस्तिकता और भक्ति तथा सभ्यता के पूर्ण प्रकाश से जगमगा रहा था, उस समय इस देश में ही ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, गणित, ज्योतिष, भेषजतत्व, काव्य, पुराण, साहित्य, धर्मादि विषयों ने पूर्ण उन्नति की थी। कश्यप, मरीचि, विश्वामित्रादि जहां के ऋषि, व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, प्रभृति जहां के कवि, पाणिनि, पतञ्जलि आदि जहां के वैय्याकरण, धन्वन्तरि, सुश्रुत, चरक आदि जहां के वैद्य, कपिल, कणाद और गौतम प्रभृति जहां के शास्त्रकार, नारद, मनु, बृहस्पति आदि जहां के धर्मोपदेष्टा, वसिष्ठ, आर्यभट्ट, पराशरादि जहां के धर्म प्रचारक, सायनाचार्य, यज्ञदेव, मल्लिनाथ प्रभृति जहां के भाष्यकार, अमर सिंह, महेश्वर, प्रभृति जिस देश के कोषकार हो गये हैं ऐसा एक देश यह भारत ही है। जिस समय यह सब सामग्री विद्यमान थी, उस समय इस देश में सनातन (सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

अहृतं न प्रियं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः) धर्म पूर्ण रूप से प्रचलित था। नरपति ऋषि मुनियों के तपोबल से, पुण्य-क्षेत्र पंच यज्ञ से, गृहस्थियों के घर और आरण्यक पाठ से कानन में पुण्य का प्रवाह वह रहा था। सनातन धर्म की महिमा सब के अन्तःकरण में खिल रही थी।

परन्तु समय की क्या अलौकिक महिमा है कि सूर्य-मण्डल को आकाश में चढ़ कर मध्याह्न समय महातीक्ष्ण होकर फिर नीचे को उतरना पड़ता है, ठीक वही दशा इस देश की हुई। जो सब का शिर मौर था वह विदेशीय शासन काल में विदेशीय शिक्षा प्रणाली से निस्सार बलहीन होकर आलस्य का भण्डार हो गया। इसकी विद्या-बुद्धि सब विदेशीय शिक्षा में लय हो जाने से धर्म-कर्म की असावधानी हो गई। संस्कृत विद्या जो द्विजमात्र का आधार थी उसके शब्द भी अब शुद्ध नहीं उच्चारण होते। इस प्रकार धर्म विप्लव होने से अनेक मतभेद भी हो गये। जिसको कुछ भी सहायता मिली झट उसने अपना नवीन पंथ कल्पना कर ली और शिष्यों को मनमाना उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। इस तरह पाखण्डियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना कर कर के अनेकों पंथ चला दिये। इसका फल इस देशमें यह हुआ कि फूट का वृक्ष उत्पन्न होकर फूलने फलने लगा और सत् धर्म में बाधा पड़ने लगी। भारतवासियों को स्वतन्त्र होने तथा ५ हजार वर्ष कलियुग बीतने पर भी कपोलकल्पित यज्ञादि के नाम पर देश में करोड़ों रुपये बरबाद किये जाते हैं। गरीबों को कोई पूछता तक नहीं है। श्रुति, स्मृति, पुराणों को पढ़ने से जानेंगे कि धर्म किसे कहते हैं, किस युग में किस को क्या करना चाहिये, दान कब, कहां, किसको देना

चाहिये, योग, यज्ञ, तप आदि कब, किसको, कैसे, किस नियम से करना चाहिये, इत्यादि का ज्ञान हो जाने से कल्पित कर्मों तथा धर्मों से बचेंगे। कलियुग में धनादि की स्थिति कैसी रहेगी, मनुष्यों का चरित्र कैसा रहेगा, स्त्रियां कैसी होंगी, किसको क्या करना चाहिये जिससे देश तथा मनुष्यों का कल्याण हो इत्यादि कलियुग का चरित्र पुराणादि सभी धार्मिक ग्रन्थों में लिखे हैं। परन्तु उन ग्रन्थों को अति विस्तृत और कठिन होने के कारण सर्वसाधारण की समझ में आता नहीं। द्विजाति अपना कर्म धर्म भलीभांति कर सकते नहीं। अनेकों प्रपंचों के कारण मनुष्यों की बुद्धि भ्रमित हुआ करती है। ऐसी दशा में हम इतना अवश्य चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपने अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान हो जाय जिसके अनुसार वह यथाशक्ति अपने अपने कर्मों को करें। इन सब भावों को लेकर मेरे हृदय में ऐसी प्रेरणा हुई कि श्रुति स्मृति पुराणों से वाक्यों को उद्धृत कर युगधर्म नाम की एक पुस्तक लिखी जाय जिससे अल्पज्ञ से अल्पज्ञ को भी युग के अनुकूल सच्चे धर्म का ज्ञान हो। युगधर्म नामक ग्रन्थ से मेरा प्रयोजन धर्मों का खण्डन द्वेष वा शत्रुता अथवा किसी का जी दुखाने से नहीं है, किन्तु इसके लिखने से केवल यही प्रयोजन है कि सर्वसाधारण को भी सत्यासत्य का ज्ञान उत्पन्न होकर शास्त्र के अनुकूल कलियुग के धार्मिक कर्मों को करने में सहायक हो और यह भी विदित हो जाय कि कलियुग में जो संन्यास, योग, यज्ञादि प्रचलित हैं उनके अनुसार चलने से हम यथार्थ धर्मपथ में स्थित हैं या नहीं। यदि नहीं हैं तो प्रपंचों से बच कर शास्त्र-पथ से पुराणों का श्रवण, भगवान का भजन तथा दानादि अनेकों धर्मों को करें। इस

भावना से मैंने उक्त पुस्तक की रचना की है। यह युगधर्म नाम का ग्रन्थ धर्म का भण्डार है, इसमें सभी विषय मिलेंगे जिनका कलियुग में आचरण करना ही मनुष्यमात्र का कर्तव्य है। जिस ग्रन्थ से जो वाक्य लिखा गया है उस ग्रन्थ का नाम वहीं पर लिख दिया गया है। कोई भी विषय इसका क्लिष्ट न रह जाय इसलिये हमने सरल भाषा कर दी है। आशा है कि प्रत्येक गृहस्थ इस अत्यन्त उपयोगी धर्म-ग्रन्थ को लेकर, पढ़ कर अपने कर्तव्यों को पालन करेंगे।

पाठक महाशयों से निवेदन है कि यदि इसमें कहीं भूल रह गई हो तो कृपा कर सूचित कर दें; उचित होगी तो दूसरी बार बना दी जायगी। देश तथा जनता को लाभ होने से मेरा परिश्रम सफल होगा।

निवेदक—

प्राप्ति स्थान
माहुरी ट्रेडिंग कम्पनी
टिकारी रोड, गया।

श्री पं० रामरेखा प्रसाद शर्मा
शिवाला बनारस,
मु० पुरानी जेल, गया।

हरिः ॐ तत्सत् । श्री राधा कृष्णाय नमः ।
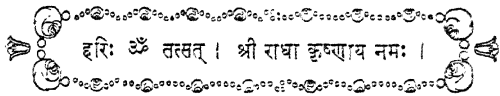
युगधर्म प्रथम भाग

जगदुत्पत्तिः, यजुर्वेद, २७ अ० २२ मन्त्र—आपो ह यद्बृहती-र्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् । ततो देवानां समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम । मन्त्रार्थ—(ह) प्रसिद्ध है (यत्) जब प्रथम (गर्भ) हिरण्य गर्भरूप लक्षण को (दधानाः) धारण करते हुए (अग्निम्) अग्नि को (जनयन्तीः) प्रगट करते हुए (बृहतीः) महान् (आपः) जल समूह (विश्वम्) सब जगत् में (आयन्) प्राप्त हुए (ततः) तब संवत्सर के उपरान्त उस गर्भ से (देवानाम्) देवताओं का (असुः) प्राण रूप आत्मा लिंग शरीर रूप हिरण्य गर्भ (एकः) एक (समवर्त्तत) प्रगट होता हुआ (कस्मै) उस प्रजापति (देवाय) देव के निमित्त (हविषा) हविद्वारा (विधेम) विधान अर्थात् पूजन करते हैं । "आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवासः" इति । ११।१।६१। श्रुतेः ।

सरलार्थ—अपरिमित जलराशि अग्नि में गर्भ धारणपूर्वक सृष्टि-प्रसवकारिणी होकर इस चराचर विश्व को व्याप्त करती हुई, उस गर्भ से समस्त देवगण के प्राण एक देवता "हिरण्यगर्भ" प्रकाश पाते हुए उस प्रजापति देवता की प्रीति के निमित्त आहुति देते हैं (ऋ० ८।७।४)

विवरण—इसीको ही कारण वारि कहते हैं । इसी कारण मानव-शास्त्र के १ अ ८ श्लो० "अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्" कहा है ।

सृष्टि दो प्रकार से है प्रथम आदि सृष्टि। इस सृष्टि में "तम आसीत्तमसा गूढ़ मग्रे" आकाश तम से आच्छादित स्वीकार किया है, फिर सब पदार्थों के व्यंजन निमित्त वायु का आविर्भाव, फिर तमनाशक ज्योति का प्रकाश उससे कारण जल राशि, उसमें बीज रोपण पूर्वक मृण्मय ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है, यह सृष्टि प्रधान रूप है ब्रह्म से प्रगट है, दूसरी सृष्टि ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त है इस सृष्टि का प्रारम्भ जल राशि से प्रगट हुए ब्रह्मा द्वारा होता है, उनकी शक्ति से जल चालन से आकाश वायु आदि प्रगट होकर जगत्कार्य करते हैं, सब के आधार होने से मृण्मय अण्ड कहा है, इसीको मनु जी ने अपने शास्त्र में पूरा विवरण किया है, वास्तव में वह सब ब्रह्मसत्ता है।

जगत प्रलय काल में अन्धकार से व्याप्त अच्छे प्रकार से जानने के अयोग्य चिन्हरहित, जिसमें तर्कना न हो सके और जिसका विशेष ज्ञान न हो सके ऐसा सर्वत्र सोते हुए के समान था। जो इन्द्रियों से प्रत्यक्ष न हो सके ऐसे सृष्टि की रचना करने में समर्थ अपनी इच्छा से शरीर धारण करने वाले और प्रकृति से प्रेरक भगवान् आकाशादि महाभूतों को प्रकाशित करते हुए प्रगट हुये जो यह परमात्मा इन्द्रियों से ग्रहण करने के अयोग्य शरीररहित, सूक्ष्मरूप, नित्य, सब प्राणियों का आत्मा और चिन्तवन करने के अयोग्य हैं, वही अपने आप प्रगट हुए।

उस परमात्मा ने अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से ध्यान करके अपने शरीर से पहिले जल को उत्पन्न किया, और उस जल में शक्ति रूप बीज डाला, वह बीज सूर्य के समान कान्तिवाला

सुवर्ण का अंडा हो गया, और उसमें सब लोकों का कर्त्ता ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए। जल को "नार" कहते हैं क्योंकि जल नर रूप परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। वही जल इस परमात्मा का प्रथम वासस्थान है, इस कारण परमात्मा को "नारायण" कहते हैं। लोक और वेद में प्रसिद्ध अव्यक्त (अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों से ग्रहण के अयोग्य) नित्य और सत् असत् की आत्मा ऐसा करने से उत्पन्न हुआ, वह पुरुष "ब्रह्मा" नाम से संसार में विख्यात हुए। उस भगवान् ने अण्डे में एक वर्ष तक रह कर आप ही अपने ध्यान से उसके दो टुकड़े कर दिये। उन दो टुकड़ों से स्वर्ग और पृथ्वी को बनाया और बीच में आकाश, आठों दिशा और जल का स्थिर स्थान अर्थात् समुद्र बनाया। फिर ब्रह्मा ने परमात्मा से सत् असत् (संकल्प विकल्प) रूप मन को और मनकी उत्पत्ति के पहिले "मैं" इस अभिमान से युक्त, काम करने में असमर्थ ऐसे अहंकार को उत्पन्न किया। फिर (अहंकार से पूर्व) आत्मा के सहायक महत्व को, फिर सब (सत्व, रज, तम) तीनों गुणों को, फिर धीरे-धीरे (रूप, रस, गंध आदि) विषयों को ग्रहण करनेवाले पांचों इन्द्रियों को उत्पन्न किया। इन असीम बलवाले (अहंकार, शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श इन छओं) के छोटे-छोटे अवयवों को उनके ही विकारों में (अर्थात् तन्मात्रा का विकार और आकाश आदि पंच महाभूत और अहंकार इनके विकारों को आपस में) मिलाकर सब प्राणियों को अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी और वृक्ष इनको) रचा। उस (प्रकृति सहित ब्रह्म) की मूर्ति के (शब्दादि तन्मात्रा और अहंकार) ये छओं अवयव सूक्ष्म हैं और उसके आश्रित हैं (अर्थात् पांचभूत

और इन्द्रियों को रचते हैं) इसी लिये उस ब्रह्म की मूर्ति को पण्डित जन शरीर कहते हैं (सांख्य के अनुसार भी सृष्टि का यही क्रम प्रतीत होता है कि प्रकृति से महत्तत्व, महत्तत्व से अहंकार, अहंकार से पाँच मात्रा, दश इन्द्रिय और एक मन और इन सोलहों से पाँच भूत उत्पन्न होते हैं) फिर उस अविनाशी, सब भूतों के बनानेवाले ब्रह्म से अपने अपने कर्मों के साथ (आकाश आदि) महाभूत और सूक्ष्म अवयवों के साथ मन उत्पन्न हुआ (आकाश का काम अवकाश देना, वायु का गति, तेज का पाक, जल का पिंडीकरण, पृथ्वी का धारण, और मन का शुभ अशुभ काम की इच्छा करना) फिर उस अविनाशी परमात्मा के द्वारा इन महाबली (महत्तत्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध) सात प्रकृतियों के छोटे-छोटे मूर्ति के अंशों से विनाश होनेवाला जगत् उत्पन्न हुआ। इन (आकाश, वायु, तेज, जल, और पृथ्वी) पाँच भूतों के (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) गुण को (वायु आदि) आगे के तत्व पाते हैं और इनमें जिसकी जो संख्या है उसमें उतने ही गुण हैं, अर्थात् आकाश में एक शब्दगुण, वायु में शब्द, स्पर्श, दो गुण, तेज में शब्द, स्पर्श, रूप तीन गुण, जल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, चार गुण, और पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध ये पाँच गुण हैं। उस परमात्मा ने सबों के नाम (जैसे गौ जाति का गौ इत्यादि) और जुदे-जुदे कर्म (जैसे ब्राह्मण का वेद पढ़ना इत्यादि) वेद के शब्दों से ही जानकर सृष्टि की आदि में अलग-अलग बनाये। उस ब्रह्मा ने देवताओं का गण, प्राणियों का गण, कर्म ही है स्वभाव जिनका ऐसे अप्राणी पाषाणादिकों का गण, और सूक्ष्म साध्यों का

अर्थात् देव विशेषों का गण, और सनातन (ज्योतिष्टोम आदि) यज्ञ इनको उत्पन्न किया। ब्रह्मा ने यज्ञ की सिद्धि के लिये ऋक्, यजु और साम इन सनातन वेदों को अग्नि, पवन और सूर्य से क्रमपूर्वक प्रगट किया। फिर काल और काल के विभाग (ऋतु मास आदि) नक्षत्र, ग्रह, नदी, समुद्र, पर्वत, और ऊँचे नीचे स्थानों को बनाया। ब्रह्मा ने इस प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा से तप, वाणी, रति, काम और क्रोध की सृष्टि की। ब्रह्मा ने कर्मों के ज्ञान के लिये (अर्थात् यज्ञ आदि) धर्म और (ब्रह्मवध आदि) अधर्म को पृथक-पृथक किया और इस प्रजा को सुख दुःख आदि के फलों को प्रजाओं के पीछे लगा दिया। पंचभूतों की जो विनाश होने वाली (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध), सूक्ष्म मात्रा कही गई है उन्हीं की सहायता से यह सम्पूर्ण जगत क्रम से अर्थात् सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से अत्यन्त स्थूल उत्पन्न होता है। ब्रह्मा ने प्रथम जिसको जिस कर्म में लगाया वह वार-वार उत्पन्न होकर उसे आप ही करने लगता है। हिंसा, अहिंसा, कोमलता, कठोरता, धर्म, अधर्म, सत्य और असत्य (झूठ) इनमें से पूर्व कल्प में ब्रह्मा ने जो जिसका कर्म बनाया था वही कर्म आप से आप उस जीव को प्राप्त हो जाता है (जैसे सिंह को हाथी मारना, हिंसक कर्म, मृग किसी को नहीं मारता यह अहिंसक कर्म है, ब्राह्मण का कर्म कोमल दयायुक्त है, क्षत्री का कठोर कर्म है, ब्रह्मचारी को गुरु की सेवा-धर्म है, ब्रह्मचारी को मांस मैथुन आदि अधर्म है, देवताओं का सत्य कथन और मनुष्यों का कथन असत्य है) जैसे बसन्तादि) ऋतु पलटने पर आप ही आप अपने-अपने ऋतु के चिन्हों

को प्राप्त हो जाती है वैसे ही देहधारी भी स्वयमेव अपने-अपने कर्मों को प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा ने लोकों की वृद्धि के लिये मुख, बाहु, जंघा और चरण से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र इनको क्रम से बनाया। ब्रह्मा ने अपने देह के दो खन्ड करके आधे से पुरुष और आधे से स्त्री को उत्पन्न किये और उसने (ब्रह्मा ने) स्त्री में विराट पुरुष को उत्पन्न किया। भगवान् कहते हैं कि हे ब्राह्मणों उस विराट् पुरुष ने तप करके जिसको उत्पन्न किया ऐसा सब जगत का रचने वाला मुझे जानो। मैंने प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा से बड़ा कठिन तप करके पहले प्रजापति दश महर्षियों को उत्पन्न किया—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद। इन महा-तेजस्वी महर्षियों ने अन्य सात मनुओं को तथा देवताओं के रहने के योग्य स्थानों को और बड़े तेजस्वी महर्षियों को उत्पन्न किया। फिर इन्होंने यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, हाथी, सर्प, सुपर्ण, तथा पितृओं के गणों को अलग-अलग उत्पन्न किया। बिजली, वज्र, मेघ, रोहित (सीधे धनुष) और टेढे इन्द्र धनुष, उल्का, निर्घात (उत्पात शब्द) केतु (पुच्छल तारे) तथा छोटे बड़े तारों को रचा और किन्नर, वानर, मत्स्य, अनेक भांति के पक्षी, पशु, मृग, मनुष्य, सर्प और दोनों ओर दांतवाले पशु इनको पैदा किया। कृमि, कीट, पतंग, जूं, मक्खी, खटमल, सब डांस, मच्छर और अनेक प्रकार के स्थावर (लता वृक्ष आदि) को पैदा किया। इस भांति इस स्थावर जंगम को मेरी आज्ञा से इन महात्माओं ने तप के योग से कर्म के अनुसार उत्पन्न किया।

पशु, मृग सर्प, दोनों ओर दांत वाले राक्षस, पिशाच और मनुष्य ये सब जरायुज हैं, अर्थात् झिल्ली से उत्पन्न होते हैं। पक्षी, सर्प. (साँप) मगर, मछली और कछुए अंडज हैं और जितने ऐसे जीव जल और स्थल में पैदा होते हैं वे सब भी अंडज हैं।

डांस, मच्छर, जूँ, मक्खी, खटमल और अन्य ऐसे ही जो गरमी से उत्पन्न होते हैं वे स्वेदज हैं। बीज से पृथ्वी फोड़ कर वा टैनी (कलम) लगाने से जो सब वृक्ष उत्पन्न होते हैं उनको उद्भिज कहते हैं और फल पकने पर जो सूख जाते हैं और जिनमें बहुत से फल और फूल लगते हैं उन्हें औषधि कहते हैं। जिनमें फूल तो लगे नहीं पर फल लगे उन्हें वनस्पति कहते हैं। जिनमें फूल और फल दोनों लगे उन्हें वृक्ष कहते हैं। अनेक प्रकार के गुच्छे, गुल्म (जो एक जड़ में से बहुत से उग आते हैं) अनेक भांति के तृण, प्रतान और लता बीज बोने या टैनी (कलम) लगाने से उग आते हैं, ये पूर्वजन्म के कर्म के कारण बहुत से तमोगुण से घिरे हुए हैं, सुख दुःख से युक्त हैं और इनके भीतर चेतना है।

अचिन्त्य पराक्रमवाला भगवान् (ब्रह्मा) सब को इस भांति उत्पन्न करके फिर प्रलयकाल के द्वारा सृष्टिकाल का नाश करता हुआ अपने आप में अन्तर्ध्यान हो जाता है। जब वह देव (ब्रह्मा) जागता है तब यह संसार चेष्टा करता है और जब यह शान्त रूप होकर सोता है तब जगत प्रलय को प्राप्त होता है। उसके (ब्रह्मा के) स्वस्थ होकर सोने पर कर्मानुसारी प्राणी अपने कर्मों से निवृत्त हो जाते हैं और उनका मन भी ग्लानि को प्राप्त होता है अर्थात् चेष्टा रहित हो जाता है। एक

साथ जब सब प्राणी उस परामात्मा में लय हो जाते हैं तब यह सब भूतों का आत्मा निश्चिन्त होकर सुख से सोता है। जब यह जीव अज्ञान का आश्रय लेकर इन्द्रियों से युक्त बहुत काल तक रहता है और (श्वास लेना आदि) अपना कर्म नहीं करता तब देह से निकल जाता है। जब यह जीव अणुमात्रिक (अर्थात् भूत, इन्द्रिय, मन आदि से युक्त) होकर स्थिर रूप (वृक्ष आदि) और चररूप (मनुष्यादि) के बीज में प्रवेश करता है तब यह उत्पन्न होकर स्थूल शरीर धारण करता है। वह अविनाशी (ब्रह्म) इस प्रकार इन सब चराचर को जाग्रत और स्वप्नावस्था से सदा जिलाता और मारता है।

स्वायंभु मनु के वंश के और भी महात्मा तथा बड़े २ पराक्रमी छः मनुओं ने अपनी २ प्रजा को उत्पन्त किया। स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और महा तेजस्वी वैवस्वत (ये नाम उन मनुओं के हैं) बड़े तेजस्वी स्वायंभुव आदि मनुओं ने अपने अपने समय में इन सब चराचरों को उत्पन्न कर इसका पालन किया।

अठारह पलकों की एक काष्ठा, और तीस काष्ठाओं की एक कला, ६० कला का एक दंड, २ दंड का एक मुहूर्त, ३० मुहूर्त (६० दंड) का एक दिन-रात होता है। १५ दिन का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास का एक ऋतु, ६ ऋतु (१२ मास) का एक वर्ष होता है। सूर्य ने देवता और मनुष्यों के दिन रात का विभाग किया है। प्राणियों के सोने के लिये रात्रि और कर्मों को करने के लिये दिन बनाया है।

मनुष्यों का एक मास पित्रों का रात दिन होता है, उसके दोनों

पक्षों का विभाग यों है कि काम करने के लिये जो कृष्ण पक्ष वह दिन और सोने के लिये जो शुक्ल पक्ष है वह रात्रि है।

मास चार प्रकार का होता है—चान्द्रमास, सौरमास, सायनमास और नक्षत्रमास। चारो मासों में भिन्न २ कार्य होते हैं। श्राद्धादि पितृ कर्म और व्रतादि देव कर्म चान्द्रमास में (चान्द्रमास के अनुकूल) होता है। चान्द्रमास कहीं किसी प्रान्त में शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर कृष्ण अमावस्या को समाप्त होता है। कहीं कृष्ण प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर शुक्ल पूर्णिमा को समाप्त होता है। यह प्रथा देश भेद के अनुकूल चली आ रही है। शास्त्रों में चान्द्रमास शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ कर कृष्ण अमावस्या को समाप्त करने को लिखा है (निर्णय सिन्धु—शुक्लादिमुख्यः। शास्त्रेषु चैत्र शुक्ल पतिपद्येव चान्द्र संवत्सरारम्भोक्तेः) पञ्चाङ्गों में चैत्र शुक्ल से संवत्सर प्रारम्भ होता है। सौरमास में विवाहादि, सायनमास में दिन का घटना बढ़ना, नक्षत्र मास में कृषी आदि किया जाता है।

पञ्चाङ्ग—पंच और अंग दो शब्दों से बना है। पांच अंग (तिथि १ वार २ नक्षत्र ३ योग ४ करण ५ ये पांच अंगों को) होने से पंचाङ्ग कहा जाता है।

वार (दिन) सूर्योदय से सूर्योदय पर्यन्त रहता है सूर्योदय लङ्का और कतिपय स्थान विषुवत रेखा पर है वह इसी प्रकार है जैसा कि इङ्गलैण्ड में ग्रीनवीच स्थान है। लङ्का में प्रातः ६ बजे सूर्योदय और सायं ६ बजे सूर्यास्त होता है। सूर्योदय के समय जो वार रहता है वही वार सूर्योदय से सूर्योदय पर्यन्त रहता है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक जो

समय है वही दिन प्रमाण और सूर्यास्त से सूर्योदय तक जो समय है वही रात्रि प्रमाण है। रात्रि प्रमाण में ५ के भाग देने से सूर्योदय का घंटा मिनट और दिन प्रमाण में ५ के भाग देने से या सूर्योदय के घंटा मिनट को १२ में घटा देने से सूर्यास्त का घंटा मिनट होता है। सूर्योदय सूर्यास्त नित्यप्रति सर्वत्र एक समय पर नहीं होता, सर्वत्र भिन्न २ होता है। क्योंकि सब स्थान विषुवत रेखा पर नहीं वल्कि उससे उत्तर या दक्षिण की ओर है। ज्यों ज्यों विषुवत रेखा से उत्तर या दक्षिण है त्यों त्यों सूर्योदय पहले पीछे और रात्र प्रमाण तथा दिन प्रमाण छोटा बड़ा होता है। विपुवत रेखा पर १२ घन्टे की रात्रि और १२ घन्टे का दिन होता है। रेखा से उत्तर में दिन बड़ा तो दक्षिण में रात्रि बड़ी और जब दक्षिण में दिन बड़ा तो उत्तर में रात्रि बड़ी होती है। और विपुवत काल साल में (एक वर्ष में) दो बार सर्वत्र होता है। विषुवत काल में दिन रात बराबर और ६ बजे सूर्योदय होता है। जब सायन सूर्य (२० मार्च को) मेष पर जाता है और (२० सितम्बर को) तुला पर जाता है तब दिन रात सम (बराबर) ६ बजे सूर्योदय होता है। जब सायन सूर्य (२० जून को) कर्क में जाता है तब दिन सब से बड़ा और रात्रि सब से छोटी होती है और जब (२० दिसम्बर को) सायन सूर्य मकर में जाता है तब रात्रि सब से बड़ी और दिन सब से छोटा होता है।

चन्द्रमा को पृथ्वी के घुमने में २६ दिन, ३१ दण्ड, ५० पल; ७॥ विपल लगता है। एक मास में ३० दिन होते हैं, इसलिये २६-३१-५०-७॥ ÷ ३० = एक भाग को तिथि कहते हैं। तिथि का

मान १७७१-५०-७॥ अर्थात् ५६ दण्ड, ३ पल, ४० विपल है। चन्द्रमा की तरह तिथि भी घटती बढ़ती है। बड़ी से बड़ी ६५ दण्ड की और छोटी से छोटी ५४ दण्ड की होती है। जब चन्द्रमा सूर्य से १२ अंश दूर हो जाता है तब एक तिथि होती है। चन्द्रमा की प्रत्येक १२ अंश के समय को तिथि कहते हैं। इस प्रकार सूर्य चन्द्रमा की हर १२ अंश की दूरी पर एक तिथि समाप्त हो जाती है और जब चन्द्रमा सूर्य से १८० अंश दूर हो जाता है तब पूर्णिमा १८०÷१२=१५ इस प्रकार ३६०÷१२=३० अमावस का सूर्य ३६० अंश दूर हो जाने पर अमावस हो जाती है। सूर्य चन्द्रमा के एक ही स्थान पर आ जाने से कृष्ण पक्ष की तिथि समाप्त हो जाती है। नक्षत्र=चन्द्रमा जब पृथ्वी की अपनी दूरी पर जो सूर्य के चक्कर लगने के पास हो और सूर्य के मार्ग को चन्द्रमा क्रान्त वृत्त कहा जाता है और इस समान दूरी पर २७ तारक समूह नक्षत्र हैं वृत्त ३६० अंश का होता है, इसलिये ३६०÷२७=नक्षत्र की दूरी १३ अंश २० कला। चन्द्रमा को इन एक २ नक्षत्र की दूरी तय करने में जो समय लगता है, वह समय और चन्द्रमा जिस नक्षत्र में रहता है वही दैनिक नक्षत्र माना जाता है। इसी प्रकार योग भी २७ है, नक्षत्रों की तरह चन्द्रमा इनको भी उसी प्रकार ३६०÷२७=१३—२० भोगता है। करण—तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं। एक तिथि में दो करण होते हैं, शुक्ल प्रतिपदा के अन्तिम के आधे हिस्से से करण की गणना प्रारम्भ होती है। करणों के नाम—बव १, बालव २, कौलव ३, तैतिल ४, गर ५, वणिज ६, विष्टि (भद्रा) ७, शकुनी ८, चतुष्पद ९, नाग १०, किंस्तुघ्न ११। पहले ७

चर फिर ४ स्थिर कुल ११ करण होते हैं। कृष्ण चतुर्दशी के परार्द्ध में शकुनी, अमावस्या के पूर्वार्द्ध में चतुष्पद, अमावस्या के परार्द्ध में नाग, शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्द्ध में किंस्तुघ्न ये चार करण स्थिर हैं, शेष बवादि जो शुक्ल प्रतिपदा के परार्द्ध से प्रारम्भ होती है वह ७ करण चर है।

सूर्यसिद्धान्त, महासिद्धान्त, ब्रह्मसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि सिद्धान्त तत्व विवेकादि ज्योतिष सिद्धान्तों के अनुसार सब ग्रह चन्द्रमा सहित पृथ्वी को केन्द्र मान कर घूमते हैं (अर्थात् सूर्य चल और पृथ्वी अचल मानी गई है) परन्तु आर्यभट्ट तथा आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंने सूर्य अचल और पृथ्वी अन्य ग्रहों की भाँति चलायमान मानते हैं। दोनों तरह के गणना में कोई भेद (फर्क) नहीं और ज्योतिष के फलादेशों में कोई अन्तर नहीं पड़ता, कारण कि समय दोनों का एक ही है। जैसे हम कहें कि पृथ्वी २४ घंटों में एक परिक्रमा पुरी करती है अथवा यों कहें कि सूर्य २४ घंटों में एक परिक्रमा पुरा करता है तो दोनों में क्या अन्तर है? कुछ अन्तर नहीं। बहुत से आधुनिकों का सिद्धान्त है कि हमारे महर्षियों के इन भेदों का ज्ञान न था। ऐसा समझना कितनी अज्ञानता की बात है। सूर्यसिद्धान्त में लिखा है कि पृथ्वी निराधार है। कवि कालिदास ने रघुवंश में लिखा है कि जानामि सीता मनघोति किन्तु लोकापवादोबलवान्मतो मे। छायाहि भूमेः शशिनो मलत्वे नारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभि। पुपोषवृद्धि हरिदश्व-दीधिते रनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमा। इससे सिद्ध होता है कि महर्षि सब सभी सिद्धान्तों को जानते थे। यह भी जानते थे कि पृथ्वी निराधार

है। चन्द्रमा अथवा सूर्य में पृथ्वी की छाया पड़ने से ग्रहण होता है। सूर्य की किरणों से चन्द्रमा में प्रकाश पड़ता है। इन सब बातों को जानते हुए पृथ्वी को अचल और सूर्य को चल माना। इसमें क्या कारण है? क्यों ऐसा किया (माना)? और भी श्रुति स्मृति पुराणों में भी अल्पज्ञता के कारण अनेकों भेद दीखते हैं। इन सब भेदों से मालुम होता है कि महर्षियों का यथार्थ तत्व समझना साधारण मनुष्यों का काम नहीं है। महर्षियों के तत्वों को समझने की चेष्टा करनी चाहिये न कि खंडन करने की। महर्षियों का सिद्धान्त समझ में आ जाने से सभी भेद-भाव दूर होकर सिद्ध हो जायगा कि महर्षियों का सिद्धान्त ठीक था और है। यजुर्वेद २३ अ० १० वां मन्त्र—सूर्य्य ऽएकाकी चरति चन्द्रमां जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजम्भूमिरावपनम्महत्। सूर्य ज्योति स्वरूप ब्रह्म (एकाकी) अद्वितीय होकर विचरते अर्थात् व्याप्त हो रहे हैं। सब के आत्मा में व्याप्त होकर बल देते हैं वा अकेले अपनी कीली पर घूमते हैं यह वेद प्रमाण हुआ। चन्द्रमा फिर प्रकाश पाते हैं अर्थात् चन्द्र शब्द से मन का बोध होता है। मन प्रति मुहूर्त ही नवीन होता है। चन्द्रमा कृष्ण पक्ष में क्षीण होकर फिर शुक्ल पक्ष में प्रगट होते हैं। (यजुर्वेद—सूर्य आत्मा जगतश्चक्षुषश्च, चन्द्रमा मनसो रजायत)। अग्नि हिम की औषधि है अर्थात् ज्ञानाग्नि के सिवाय मूर्खतारूपी जाड़े की कोई औषधी नहीं है। पृथ्वी बोने का क्षेत्र है अर्थात् पृथ्वी कर्मरूप बीज बोने का क्षेत्र है। इसमें अनेकों प्रमाण हैं "असौ वा आदित्य एकाकी चरत्येष ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मवर्चसमेवास्मिंस्तद्धते" इति (१३।२।६।१०) श्रुतेः। इससे अश्व में ब्रह्म तेज धारण करता है

"चन्द्रमा वै जायते पुनरायुरेवास्मिंस्तद्धते" इति (१३।२।६।११) श्रुतेः। इससे अश्व में आयु धारण करता है "अग्निर्वै हिमस्य भेषजं तेज एवास्मिंस्तद्धते" इति (१२) श्रुतेः। इससे तेज धारण करता है "अयं वै लोक आवपनं महदस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठति" इति (१३) श्रुतेः। श्री मद्भागवत, पंचमस्कन्ध—यादव भासयति सुरगिरिमनुपरिक्रमन्भगवानादित्यौ वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनंदन्समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यतीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद्द्वितीय इव पतंगः। मेरुपर्वत को परिक्रमा देते हुए सूर्य नारायण लोकालोक पर्यन्त पृथ्वी तल को प्रकाशित करते हैं, परन्तु एक साथ समग्र भूमिमंडल को प्रकाशित नहीं करते, किन्तु आधेभाग को तो प्रकाशित करते हैं और आधे भाग को अन्धकार से ढक देते हैं। यह बात राजा प्रियव्रत को पसन्द न आयी, इसलिये राजा प्रियव्रत ने विचार किया कि रात को भी दिन बना दूँगा। ऐसा सोंच कर भगवान के कृपा से सूर्य के समान वेगवाला ज्योतिर्मय रथ बनाया और उसमें बैठ कर मानों दूसरे सूर्य होवें, ऐसे सात वार सूर्य के पीछे २ चौतरफ फिरा। यह प्रत्यक्ष प्रमाण हुआ। वेद प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर तथा महर्षि सब त्रिकालज्ञ दिव्य दृष्टिवाले होते थे; दिव्य दृष्टि से स्वयं देख कर लिखते थे। उनके वाक्यों में जरा भी सन्देह होने की सम्भव नहीं। वेद को जो मानता है वही आस्तिक है जो वेद को नहीं मानता वही नास्तिक है। इसपर महर्षियों को पूर्णरूप से ध्यान रहता था।

पृथ्वी गोल है जिसका विषुवत रेखा पर व्यास ७६२६ मील है

और उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव तक व्यास ७८९९ मील है। विषुवत रेखा पर परिधि प्राय: २४९०० मील है। अपनी धूरी पर २३ घन्टा ५६$\frac{१}{१५}$ मिनटों में प्रतिदिन घुमती है। सूर्य के चारो ओर एक पुरी परिक्रमा ३६५ दिन, ६ घन्टा, ९ मिनट ९ सेकेन्डो में करती है। सूर्य से इसकी दूरी प्राय: ९२८९७००० मील है। पृथ्वी घुमती है यह पाश्चात्यों का सिद्धान्त है।

सौर जगत में सूर्य, ग्रह, उपग्रह तथा धूमकेतु अथवा पूछवाले तारे सम्मिलित हैं, जिनका मध्य अर्थात् केन्द्र सूर्य है। सूर्य अपनी धूरी पर प्राय: २५$\frac{१}{३}$ दिनों में घूमता है। सूर्य पृथ्वी से ९२८९७००० मील दूरी पर है। सूर्य का व्यास ८६४००० मील है। पृथ्वी के व्यास से प्राय: ११० गुना बड़ा है। सूर्य सौर जगत के मध्य में है। पृथ्वी के चारो ओर एक पुरी परिक्रमा ३६५ दिन, ६ घन्टे में कर लेते हैं।

ग्रह उनको कहते हैं जो घुमते रहते हैं। पाश्चात सिद्धान्त से वे दो प्रकार के हैं। एक जिनको मुख्य ग्रह कहते हैं दूसरे उपग्रह कहलाते हैं। सूर्य सिद्धान्तादि से सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु नवग्रह कहे जाते हैं। पाश्चात सिद्धान्त से बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनिश्चर, यूरेनस, नेपच्यून, एरोस, पैलास, जूनो। ये सब आर्य सिद्धान्त से पृथ्वी को केन्द्र मान कर पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। पाश्चात सिद्धान्त से सूर्य को केन्द्र मान कर सूर्य के चारो ओर परिक्रमा करते हैं। दूसरे ग्रह उपग्रह कहलाते हैं। वे मुख्य ग्रहों के चारो ओर घुमते हैं। सूर्य से शनि पर्यन्त सब ग्रह आकाश पर देखने में आते हैं, परन्तु राहु केतु देखने में नहीं आते।

राहु केतु दोनों ग्रहों को छाया ग्रह भी कहते हैं। पृथ्वी से चन्द्रमा सब ग्रहों से निकट है। पृथ्वी की चारो ओर २६ दिन, ३१ घटी, ५० पल, ७॥ विपल में, चन्द्रमा परिक्रमा पुरी करता है। यह पृथ्वी से छोटा है। इसका व्यास २१६२ मील है। पृथ्वी से प्रायः २३८८४० मील दूर है। यह पृथ्वी के चारो ओर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमता है। पाश्चात सिद्धान्त से सूर्य के चारो ओर घुमता है। जितने समय में पृथ्वी अपनी धूरी पर एक पूरी परिक्रमा करती है चन्द्रमा $\frac{१}{२७}$ घूमता है, इसलिये चन्द्रमा का उदय $\frac{१}{२७}$ + २४ अर्थात् ५४ मिनट प्रतिदिन देरी में होता है। चान्द्रमास २९$\frac{१}{२}$ दिन का होता है। चान्द्र दिन (अर्थात् चन्द्रोदय से चन्द्रोदय पर्यन्त) २४ घण्टा ५४ मिनट का होता है। सूर्य के द्वारा चन्द्रमा में प्रकाश होता है।

पृथ्वी से सूर्य तथा चन्द्रमा के बिम्ब समान दिखाई देते हैं, परन्तु सूर्य बहुत बड़ा है और पृथ्वी से बहुत दूर है। उसकी तुलना में चन्द्रमा बहुत ही छोटा है और पृथ्वी के बहुत समीप है। दूर के पदार्थ सदा छोटे दिखलाई देते हैं परन्तु समीप के पदार्थ बड़े दिखलाई देते हैं। दोनों बिम्बों के समान दिखलाई देने का यही कारण है।

मङ्गल बहुत बातों में पृथ्वी के समान है, इसी कारण इसको मङ्गलो भूमि पुत्रश्च कहते हैं। यह अपनी धूरी पर २४ घन्टा ३७ मिनट २२ सेकेन्डों में घूमता है। सूर्य तथा पृथ्वी के चारो ओर ६२७ दिनों में अथवा २ वर्षों में एक परिक्रमा पूरी करता है। यह गहिरे लाल रंग का है। इसका व्यास ४२३० मील है। सूर्य से प्रायः १४,१५,५०,००० मील दूरी पर है। इसके २ उपग्रह हैं।

बुध यद्यपि छोटा है तथापि चमकदार ग्रह है। सूर्य के बहुत समीप होने से बहुधा स्पष्ट नहीं दिखलाई देता है। सूर्यास्त के उपरान्त अथवा प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले दिखलाई देता है। यह प्रायः ८८ दिनों में सूर्य तथा पृथ्वी की चारो ओर एक परिक्रमा पुरी करता है। इसका व्यास प्रायः ३००० मील है। यह सूर्य से प्रायः ३६०००००० मील दूरी पर है। अपनी धूरी पर प्रायः २४ घंटा, ६ मिनट में घूमता है। इसको उपग्रह नहीं है।

बृहस्पति सब ग्रहों से बड़ा है। शुक्र को छोड़ कर शेष सब ग्रहों से तेज है। इसका व्यास प्रायः ८७७०० मील है और पृथ्वी के व्यास से ग्यारह गुणा बड़ा है। यह अपनी धूरी पर प्रायः १० घन्टों में घूमता है और सूर्य तथा पृथ्वी की चारो ओर एक परिक्रमा करने में ४३३२½ दिन अथवा १२ वर्ष लगते हैं। इसके चारो ओर आठ चन्द्रमा घूमते हैं जिनको उपग्रह कहते हैं और वे प्रायः इतने ही बड़े हैं जितना कि चन्द्रमा हैं यह सूर्य से प्रायः ४८३२८८००० मील दूरी पर है।

शुक्र आकाश में सबसे रमणीय दिखलाई देता है। इसकी चमक बड़ी तेज है। कभी-कभी दोपहर में भी दिखलाई देता है। यह अपनी धूरी पर २३⅚ घंटों में घूमता है और पृथ्वी या सूर्य के चारो ओर एक परिक्रमा २२५ दिनों में करता है। इसका व्यास ७७०० मील है। सूर्य से ६७२००,००० मील दूरी पर है। इसके भी उपग्रह नहीं हैं।

शनैश्चर सब ग्रहों से अधिक दूरी पर है। इस की चमक बहुत तेज नहीं है। यह अपनी धूरी पर १० घंटे १४ मिनट में घूमता है

और सूर्य तथा पृथ्वी को घुमने में (एक परिक्रमा पूरी करने में) १०७५९½ दिन अर्थात् २९½ वर्ष लगते हैं। इसका व्यास ७५६०० मील है। यह सूर्य से प्राय: ८८६००००००० मील दूर है।

राहु केतु को फलित ज्योतिष में ग्रह माना है। पृथ्वी को ग्रह नहीं माना है। सूर्य को ग्रह माना है और चन्द्रमा, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर को भी ग्रह माना है। परन्तु लग्न पृथ्वी को बतलाता है। इनके अतिरिक्त यूरेनस तथा नेप्चून (जिनका भारत-वर्ष में नाम इन्द्र तथा वरुण रक्खा गया है) इसका फल पाश्चात्य ज्योतिषी बतलाते हैं। हमारे शास्त्रों में इन ग्रहों का फल नहीं लिखा है।

ध्रूव तारा—जैसा कि सभी, नक्षत्र, ग्रह, तारे, पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए दिखलाई देते हैं, उत्तर दिशा के तारों में ऐसा नहीं होता, यदि ध्यान देकर देखा जाय तो विदित होगा कि ये तारे वृत्ताकार घूमते हैं अस्त नहीं होते इन में से एक तारा ऐसा दिखलाई देगा जिसका न तो उदय होता है न अस्त होता है, यही ध्रुव तारा है। सप्तर्षि मण्डल के पास यह रहता है, इसके समीप के तारे अस्त नहीं होते, इसी के चारो ओर परिक्रमा करते हैं।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ मीन ये बारह राशि हैं। एक एक राशि में ३०–३० अंश; १२ राशि में ३६० अंश होते हैं और नक्षत्रों का मान १३ अंश २० कला प्रति नक्षत्र और एक नक्षत्र में चार चरण, २७ नक्षत्रों का १०८ चरण होते हैं। ३० अंशों की एक राशि होती है और एक राशि में ९ चरण होते हैं। एक-एक नक्षत्र में एक चरण का मान ३ अंश २० कला

होने से ३० अंशों में नव नवांश के एक राशि होती है। इसी नव चरणों के एक राशि भी कहते हैं।

मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन होता है। उन दोनों (रात दिन) का विभाग यों है कि कर्क संक्रान्ति से ६ मास दक्षिणायन दैत्यों का दिन और देवताओं की रात्रि होती है। मकर संक्रान्ति से ६ मास उत्तरायण देवताओं का दिन और दैत्यों की रात्रि होती है। दक्षिणायन में क्रमशः रात्रि बड़ी और दिन छोटा होता जाता है। उत्तरायण में क्रमशः रात्रि छोटी और दिन बड़ा होता जाता है।

सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये चारो युगों को एक हजार बार बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के एक दिन को एक कल्प कहते हैं। अपने वर्ष प्रमाण से १०० वर्ष की आयु ब्रह्मा की होती है। ब्रह्मा के हजार दिन बीतने पर विष्णु की एक घड़ी (एक घटी) विष्णु की बारह लाख घड़ी (घटी) बीतने पर महादेव जी की आधी कला और महादेव जी की एक अरब अर्धकला बीतने पर ब्रह्मा जी का एक अक्षर होता है। ब्रह्मा जी के एक कल्प में (एक दिन में) १४ मनु (स्वायंभुव, स्वारोचिस, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुस, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, इन्द्रसावर्णि) और १४ इन्द्र होते हैं। वर्तमान सातवें वैवस्वत मन्वन्तर में अट्ठाइसवें कलियुग का पहला चरण है। एकहत्तर चतुर्युगों का एक मन्वन्तर होता है। १४ मन्वन्तर बीतने पर प्रलय होता है। युगधर्म लिखने के दिन तक (सम्वत् २००६ तक) कलियुग ५०५३ वर्ष बीत चुका है। ४२६६९४७ वर्ष बाकी है।

सतयुग वर्ष १७२८०००	चारो युगों का योग वर्ष ४३२००००
त्रेता वर्ष १२९६०००	ब्रह्मा का एककल्प (एकदिन) ४३२०००००००
द्वापर वर्ष ८६४०००	ब्रह्मा का एक मास १२९६०००००००००
कलियुग वर्ष ४३२०००	ब्रह्मा का एक वर्ष १५५५२००००००००

ब्रह्मा की आयु १५५५२०००००००००० वर्ष की होती है। ३०६७२०००० वर्ष का एक मन्वन्तर होता है और ४२९४०८०००० वर्ष बीतने पर प्रलय होता है।

कल्प कल्प में प्रलय होने पर भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों विद्यमान रहते हैं और सर्वदा श्रुति, स्मृति, सदाचार का निर्णय करते हैं। कोई वेद का कर्ता नहीं है। कल्प की आदि में पूर्व के समान वेद को स्मरण कर ब्रह्मा जी चतुर्मुखो द्वारा प्रकाशित करते हैं। और जो मनु कल्प-कल्प में होते हैं वह भी उसी प्रकार प्रथम के समान युगों के अनुकूल धर्मों को स्मरण कर प्रवृत्त करते हैं।

कार्तिक शुक्ल नवमी बुधवार को श्रवण नक्षत्र वृद्धि योग में दिन के प्रथम याम में सतयुग प्रारंभ हुआ। सतयुग में मत्स्य, कूर्म, वाराह और नृसिंहावतार विष्णु के हुए। पाप ० पुण्य २०। हिरण्यकश्यपु, प्रह्लाद, वैरोचन, वलि, वाणासुर ये पांच धर्मिष्ठ राजा हुए। मनुष्य की आयु १००००० वर्ष की। शरीर की ऊँचाई २१ हाथ। सुवर्णमय पात्र। रत्नमय द्रव्य। ब्रह्माण्डमय प्राण। तीर्थ पुष्कर। स्त्रियां पद्मिनी और पतिव्रता। धर्म में परायण। सूर्यग्रहण संख्या ३२ हजार। चन्द्रग्रहण संख्या ५ हजार। सब वर्ण अपने-अपने धर्म (वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षा-

द्धर्मस्य लक्षणम्) में निरत। ब्रह्म की उपासना (तपस्या) में प्रवीण। ब्राह्मण सब चारो वेद के ज्ञाता। सत्यभाषी, पराई स्त्री और परधन से अनिच्छावान्। श्राप देने और अनुग्रह में समर्थ। गौवें इच्छानुसार दूध देनेवाली। नदियां जल से परिपूर्ण। पृथ्वी धनधान्य से युक्त। अनेकों रत्नों से सुशोभित। एक बार बो देने से नवबार ग्रहण करने योग्य थी।

वैशाख शुक्ल तृतीया सोमवार को रोहिणी नक्षत्र शोभन योग्य में दिन के द्वितीय याम में त्रेता प्रारम्भ हुआ। त्रेता में वामन, परशुराम, राम ये तीन औतार विष्णु के हुए। पाप ५ पुण्य १५। विश्वामित्र, भगीरथ, दिलीप, मकरध्वज, दशरथ, राम, लवकुशादि राजा हुए। मनुष्य की आयु १०००० वर्ष की। शरीर की ऊँचाई १४ हाथ। चांदी के पात्र। सुवर्णमय द्रव्य। मनुष्यों के प्राण अस्थि (हड्डी) गत। तीर्थ नैमिषारराय। स्त्रियां चित्रिणी और पतिव्रता। सूर्यग्रहण ३२००। चन्द्रग्रहण ५००। सब वर्ण अपने-अपने धर्म में तत्पर और ज्ञानी (ईश्वर सम्बन्धि ज्ञान में प्रवीण)। ब्राह्मण सब ३ वेद के ज्ञाता। सत्यभाषी। ईश्वर की आराधना में तत्पर। पराई स्त्री और परधन से अनिच्छावान्। श्राप देने और अनुग्रह में समर्थ। गौवें ३ काल दूध देनेवाली। नदियों में त्रिभाग जल। पृथ्वी धान्यों से युक्त तथा सुवर्णादि धातूओं से सुशोभित। एक बार बो देने से सातबार ग्रहण करने योग्य थी।

माघ कृष्ण अमावस्या शुक्रवार को धनिष्ठा नक्षत्र वरीयसियोग में दिन के तृतीय याम में द्वापर प्रारम्भ हुआ। द्वापर में कृष्णावतार और

वौद्धावतार विष्णु के हुए। पाप १० पुण्य १०। अङ्ग, पांडु, युधिष्ठिर, परीक्षितादि राजा हुए। मनुष्य की आयु १००० वर्ष की। शरीर की ऊँचाई ७ हाथ। ताम्रपात। रौप्यमय द्रव्य। तीर्थ में कुरुक्षेत्र। मनुष्यों के प्राण त्वचागत। स्त्रियां शंखिनी। सूर्यग्रहण ३२०। चन्द्रग्रहण ५०। सब वर्ण अपने-अपने धर्म में तत्पर। ब्राह्मण २ वेद के ज्ञाता। सत्यासत्यभाषण से युक्त। श्राप देने और अनुग्रह में समर्थ। ईश्वर की आराधना में तत्पर। गौवें प्रातः सायं दूध देने वालीं। नदियों में मध्यम जल। पृथ्वी धन धान्यों से युक्त। एकबार बो देने से पांचबार ग्रहण करने योग्य थी।

भाद्र कृष्ण तिरोदशी रविवार को कृतिका नक्षत्र व्यतिपातयोग निशीथ समय में (अर्द्ध रात्रि में) कलियुग का प्रारम्भ हुआ। शेष कलि में (८२१ वर्ष बाकी रहने पर) सम्भल देश में गौड ब्राह्मण के गृह में विष्णु के कलंकि औतार होगा। पाप १५ पुण्य ५। मनुष्य की आयु १२० वर्ष। शरीर की ऊँचाई साढ़ेतीन हाथ। मृतिका पात्र। अस्थि व्यवहार। कूट द्रब्य। मनुष्य सब वर्ण व्यवस्था से रहित। लोक में धूर्त विद्या की पूजा होगी। तीर्थ में गंगा। मनुष्यों के प्राण अन्नमय। पृथ्वी वीज से हीन। सब मनुष्य धर्म कर्म से रहित। मिथ्या प्रचार। ब्राह्मण सब वेद से हीन। कुमार्ग में रत। गौवें दूध से हीन। नदियां जल से रहित। स्त्रियां हस्तिनी और पर पुरुष में प्रीति करने वाली। असंख्य सूर्य- ग्रहण होंगे।

कलिका स्वरूप

पिशाचवदनः क्रूरः कलिश्च कलह प्रियः। वाम हस्ते धृतः शिश्नो

दक्षे जिह्वाञ्च नृत्यति ।

पिशाच के सदृश शरीर, क्रूर प्रकृति, कलह में प्रीति, बायें हाथ से लिङ्ग और दाहिने हाथ से जिह्वा को पकड़े हुए नृत्य करता हुआ कलि-युग का स्वरूप है।

कलि का महात्म्य— न देवे देवत्वं कपटवसवस्ता पशजनाः जनो-मिथ्यावादी विरलतरवृष्टिजलधराः । प्रसन्नार्नीचानामवनिपतयो नष्टम-तयो जना शिष्टा नष्टा अहह कलिकालो विलसतु ॥ धर्मप्रव्रजस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरेगतः पृथ्वी मन्दफला नरः कपटिनः वितञ्चशाठ्यो-र्जितम् । राजानोर्थपरः न रक्षणपराः पुत्राः पितुर्द्वेषिणः साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्राप्ते कलौ दुर्युगे ॥ निर्वीर्या पृथिवी निरौषध रसा नीचा महत्वं गताः । भूपाला निजकर्म धर्म रहिता विप्राः कुमार्गे रताः । भार्या भर्तृ विरोधिनी पररता पुत्रः पितुर्द्वेषिता । हा कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्या मृता जे नराः ॥ गीता पुस्तक हाथ साथ विधवा माला विशाला गले । गोपी चन्दन चर्चितं सुललितं भाले च वक्षःस्थले । वैरागी पटवा कुम्हार नटवा कोरी धुना धीमरो । हा संन्यास कुतो गतः कलि-युगे वार्तापि न श्रुयते ॥ शूद्रा प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः इत्यादि ।

कलियुग में देवताओं में देवत्वशक्ति की कमी हो जावेगी, तपस्वी लोग कपट के वेश धारण करने में प्रवीण होंगे, मनुष्य सब मिथ्या भाषी होंगे (झूठ बोलने वाले होंगे), अल्पवृष्टि होगी, नीचो में प्रसन्नता रहेगी, राजाओं की मति नष्ट हो जावेगी, मनुष्य सब शिष्टाचार से रहित होंगे, अन्नादि की उत्पत्ति कम होगी, मनुष्य सब क्रूरता से द्रव्योपार्जन करने में तत्पर रहेंगे (द्रव्य कमायेंगे) । राजा लोग प्रजाओं से कर वशुल

करेंगे पर उन प्रजाओं की रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकेंगे, पुत्र सब पिता माता को कष्ट देंगे, साधुजनों को पीड़ा और दुर्जनों को सुख सम्पत्ति होगी, ब्राह्मण सब कुमार्ग में लीन रहेंगे, स्त्रीयां पति की आज्ञा पालन न करेंगी, विधवायें हाथ में गीता की पुस्तक, गले में विशाल माला धारण करेंगी, ललाट में तथा वक्ष स्थल में गोपी चन्दन लगावेंगी, पटवा, कुम्हार, नट, कोरी, धुनिआ, धीमर ये सब वैरागी होंगे (वैराग्य धारण करेंगे), शूद्र दानों को ग्रहण करेंगे और तपस्वी के भेष धारण कर जीविका करेंगे। कलियुग में ये सब शास्त्र विरुद्ध कर्म होने से सद्ग्रंथ तथा धर्म सब लुप्त हो जायेंगे। अधर्म तथा कपोल-कल्पित धर्मों का साम्राज्य रहेगा।

कलियुग में गंगादि की स्थिति।

पृथ्वी गंगया हीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ। तदैव विष्णु स्त्यजति मेदिनी नर पुंगव। कलौदश सहस्राणि विष्णुस्त्यजति मेदिनी। तदर्धं जाह्नवी तोयं तदर्धं ग्राम देवता।

कलियुग के अन्त में पृथिवी गंगा से हीन हो जायगी। ग्राम देवता और विष्णु भगवान् भी यहाँ से चले जायगें।

शरीर में गंगा की स्थिति—आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्था सत्योदका शील तटा दयोर्मि तत्राभिषेकं कुरु पांडु पुत्र नवारिणा शुद्ध्यतिचान्तरात्मा।

आत्मा नदी, संयम पुण्य तीर्थ, सत्य जल, शील तट (अरार), दया भूमि है, इस नदी में स्नान करने से अन्तरात्मा की शुद्धि होती है। जल से स्नान करने से शरीर की शुद्धि होती है अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती।

———

युगधर्म—द्वितीय भाग

युग-धर्म—मनुस्मृतिः । अ० १

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ।
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान् प्रति वर्तते । ८१ ।
इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः ।
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः । ८२ ।
अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः । ८३ ।
वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम् ।
फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावाश्च शरीरिणाम् । ८४ ।
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः । ८५ ।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दान मेकं कलौ युगे । ८६ ।

सतयुग में सब धर्म और सत्य चार चरण से (पूर्ण रूप से) था । अधर्म से किसी प्रकार का (धन आदि का) आगमन मनुष्यों के पास नहीं होता था । ८१ । (त्रेता आदि) अन्य युगों में (अधर्म से धन आदि के उपार्जन से) धर्म का (चार चरणों में से) एक २ चरण घटता जाता है और (धन तथा विद्या से संचित किये) धर्म का भी चोरी, झूठ और छल से एक २ चरण घट जाता है । ८२ । सत-

युग में मनुष्य नीरोग, सब सिद्धियों से युक्त और चार सौ वर्ष की आयु वाले होते थे। त्रेता आदि में आयु सौ २ वर्ष कम होती है अर्थात् त्रेता में तीन सौ, द्वापर में दो सौ और कलियुग में सौ वर्ष की आयु होने लगती है। ८३। वेद में कही हुई मनुष्यों की आयु, कर्मों का फल और मनुष्यों का लोक में प्रभाव ये युगों के अनुसार होते हैं। ८४। युगों के घटने के अनुसार मनुष्यों के धर्म सतयुग में अन्य, त्रेता में अन्य, द्वापर में अन्य, और कलियुग में शून्य (धर्म का लोप) हो जाता है। ८५। सतयुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में केवल दान ही प्रधान (मुख्य) धर्म है। ८६।

युगधर्म—पाराशर स्मृति। अ० १

अस्मिन्मन्वन्तरे धर्माः कृत त्रेतादिके युगे।
सर्वे धर्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे। १६।
अन्ये कृतयुगे धर्मा स्त्रेतायां द्वापरे युगे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानु सारतः। २२।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञान मुच्यते।
द्वापरे यज्ञ मेवाहु र्दान मेकं कलौयुगे। २३।
कृते तु मानवा धर्मा स्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः।
द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः। २४।
त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राम मुत्सृजेत्।
द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे। २५।
कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च।
द्वापरे त्वन्न मादाय कलौ पतति कर्मणा। २६।

अभिगम्य कृते दानं त्रेता स्वाहूय दीयते ।
द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ । २८ ।
अभि गम्योत्तमं दान माहूयैव तु मध्यमम् ।
अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् । २६ ।
जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च ।
जिताश्चौरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः । ३० ।
सीदन्ति चाग्नि होत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ।
कुमार्यश्च प्रसूयंते तस्मिन्कलियुगे सदा । ३१ ।
कृते त्वस्थिगताः प्राणा स्त्रेतायां मासमाश्रिताः ।
द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः । ३२ ।
युगे युगे च ये धर्मा स्तत्र तत्र च ये द्विजाः ।
तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः । ३३ ।
चतुर्णामपि वर्णाना माचारो धर्मपालकः ।
आचारभष्ट देहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः । ३७ ।

इस मन्वन्तर में सतयुग, त्रेता, द्वापर में शक्ति की विशेषता होने के कारण युगानुकूल धर्म स्थित रहते हैं और कलियुग में शक्ति की कमी हो जाती है इस कारण सभी धर्म नष्ट (लोप) हो जाते हैं ।१६। शक्ति की वृद्धि और हानि युगों के अनुसार ही होती है उसी कारण मनुष्यों का धर्म सतयुग में और प्रकार का, त्रेता में और प्रकार का, द्वापर में और प्रकार का, कलियुग में ऋषियों ने मनुष्यों की शक्ति के अनुसार ही और प्रकार के धर्म वर्णन किये हैं ।२२। कृतयुग में (सतयुग में) शक्ति विशेष थी इस कारण तप श्रेष्ठ (तप प्रधान), त्रेता में ज्ञान श्रेष्ठ

(ज्ञान प्रधान), द्वापर में यज्ञ श्रेष्ठ (यज्ञ प्रधान) और कलियुग में शक्ति न्यून हो जाने के कारण केवल दान की ही प्रधानता कही है, क्योंकि कलियुग में तप, ज्ञान, यज्ञादि हो नहीं सकते ।२३। सतयुग में मनुजी के धर्म, त्रेता में गौतम के, द्वापर में शंख और लिखित ऋषियों के, कलियुग में पाराशरजी के कहे हुए धर्म प्रधान माने जाते हैं ।२४। सतयुग में संसर्ग दोष लगने के कारण पाप करने वालों के देश को त्याग देते थे, त्रेता में ग्राम को, द्वापर में पाप करने वाले के कुल को, कलियुग में केवल पापकर्ता को ही छोड़ देना चाहिये ।२५। सतयुग में मनुष्य पतित के साथ वार्तालाप करने से, त्रेता में स्पर्श से, द्वापर मे पतित के अन्न लेने से, कलियुग में नीच कर्म करने से पतित होता है ।२६। सतयुग में श्रद्धा अधिक थी इस कारण ब्राह्मण के घर पर जाकर, त्रेता में श्रद्धा सहित ब्राह्मण को बुला कर, द्वापर में याचना करने वाले को श्रद्धापूर्वक, कलियुग में श्रद्धा की कमी होने के कारण सेवा कराकर दान देते हैं ।२८। जो दान स्वयं जाकर दिया जाता है वह उत्तम, बुलाकर दान देना मध्यम, याचना करने पर देना अधम और जो दान सेवा कराकर दिया जाता है वह निष्फल होता है ।२९। कलियुग में धर्म की पराजय अधर्म से, सत्य की पराजय झूठ से, राजाओं की पराजय चोरों से और पुरुषों की पराजय स्त्रियों से होती है ।३०। कलियुग में अग्निहोत्र और गुरुपूजा नष्ट हो जाती है, कलि के प्रभाव से कुमारी भी सन्तान उत्पन्न करती है ।३१। सतयुग में अस्थि में, त्रेता में मांस में, द्वापर में रुधिर में, कलियुग में अन्न में ही प्राण स्थित रहते हैं ।३२। युग युग में जो जो धर्म होते हैं उन्हीं उन्हीं युगों के अनुकूल ब्राह्मण

होते हैं, उनकी निन्दा करना उचित नहीं। ३३ । आचार ही चारों वर्णों का धर्मों का पालन करने वाला है कारण कि आचार के बिना केवल कथन मात्र से ही धर्म का पालन नहीं हो सकता। जो मनुष्य आचार से भ्रष्ट हैं और जिन्होंने धर्माचरण करना छोड़ दिया है उनसे धर्म विमुख हो जाता है।

कलियुग में वर्जित (त्याज्य) धर्म। निर्णय सिन्धुः धर्म सिन्धुः।

समुद्रयातुः स्वीकारः कमंडलुविधारणम्।
द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा।
देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः।
मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा।
दत्तात्तायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च।
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ।
महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः।
इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः।
अग्निहोत्रं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्।
गोत्रान्मातुः सपिंडाच्च विवाहो गोवधस्तथा।
नराश्वमेधौ मद्यं च कलौ वर्ज्यं द्विजातिभिः।
द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्यापि संग्रहः।
सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमण्डलु विधारणम्।
चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च।
कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदा त्रेता परिग्रहः।

संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानता ।
औरसो दत्तकश्चैतौ पुत्रौ कलियुगे स्मृतौ ।
अन्यांदशविधान्पुत्रान्कृताद्यान्वर्जयेत्कलौ ।

बृहन्नारदीय में कहा है कि समुद्र की यात्रा, कमण्डलु धारण (संन्यास) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनको जो अपने वर्ण की न हो उसके (उस कन्या के) साथ विवाह, देवर आदि से पुत्र की उत्पत्ति, मधुपर्क में पशु का वध, श्राद्ध में मांस का पिंड दान, वानप्रस्थाश्रम जो कन्या दे दी गयी हो और अक्षतयोनि हो इस कन्या का फिर दूसरे को दान, बहुत काल तक ब्रह्मचर्य नरमेध, अश्वमेध और गोमेध आदि यज्ञ, संन्यास तथा मख इन सब धर्मों को कलियुग में वर्जदे (न करे) । निगम का वाक्य है कि अग्निहोत्र, गवालम्भ, संन्यास, मांस का पिण्ड देवर से पुत्र की उत्पत्ति ये सब कलियुग में वर्जित है । हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वाक्य है कि माता के सपिंड और गोत्र से विवाह, गोविशसन, नरमेध, अश्वमेध, और मद्य ये सब कलियुग में द्विजातियों को त्यागनी चाहिये । हेमाद्रि में आदित्य पुराण का वाक्य है कि नाव में बैठ कर समुद्र यात्रा, सत्र (यज्ञ) की दीक्षा (उपदेश) और संन्यास, कलियुग में वर्जित है । लौगाक्षि का वाक्य स्मृति चन्द्रिका में है कि चार हजार, चारसौ वर्ष कलियुग बीत जाय तब ब्रह्मण अग्निहोत्र और संन्यास को ग्रहण न करे । त्रेता परिग्रहसे सर्वाधान लेना चाहिये । श्रौत स्मार्त अग्नियों को पृथक करना अर्धाधान होता है, पहिले युगों के समान उनकी एकता करने को सर्वाधान कहते हैं । औरस और दत्तक ये दो ही पुत्र कलियुग में हैं । क्रीत (गोद) आदि दश पुत्रों को कलियुग में वर्ज दे । इन

सभी वाक्यों का सारांश एक ही है कि कलियुग में असंतोषादि के बढ़ जाने के कारण सतयुग आदि के धर्म यज्ञादि नहीं हो सकते इसलिए केवल भगवान का नाम जपने से इच्छित फलों की सिद्धि होती है।

युगधर्म—विष्णु पुराण—अंश ६ अ० २

शूद्रास्साधुः कलिस्साधुरित्येवं श्रावतां वचः। ६।
योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्ति कः। ८।
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ। १५।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिस्साध्विति भाषितम्। १६।
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्। १७।
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नाति पुरुषः कलौ।
अल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोस्म्यहं कलेः। १८।
द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान्।
निजाञ्जयति वै लोकाञ्छूद्रो धन्यतरस्ततः। २३।
योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिराः।
तद्धिताशुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः। २८।
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा।
तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्विति योषितः। २९।
अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तवन्धः परं व्रजेत्। ४०।

विष्णुपुराण में वेदव्यासजी ने मुनिजनों को सुनाते हुए कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ हैं, स्त्रियां ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है, यह वचन कहा। ६, ८। जो फल सतयुग में दस वर्ष तपस्या ब्रह्मचर्य और जप आदि करने से मिलता है उसे मनुष्य त्रेता में एक वर्ष, द्वापर में एक मास, और कलियुग में केवल एक दिन रात में प्राप्त कर लेता है इस कारण ही मैंने कलियुग को श्रेष्ठ कहा है। १५। जो फल सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ, और द्वापर में देवार्चन करने से प्राप्त होता है वही फल कलियुग में श्री कृष्ण चन्द्र का नाम कीर्तन करने से मिल जाता है। १७। हे धर्मज्ञगण कलियुग में थोड़े से परिश्रम से ही पुरुष को महान धर्म की प्राप्ति हो जाती है इसलिये मैं कलियुग से अति सन्तुष्ट हूँ। १८। जिसे केवल (मन्त्र हीन) पाक यज्ञ का ही अधिकार है वह शूद्र द्विजों की सेवा करने से ही सद्गति प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह अन्य जातियों की अपेक्षा धन्यतर है। २३। स्त्रियां तो तन मन धन और वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोकों को अनायास ही प्राप्त कर लेती है जो कि पुरुषों को अत्यन्त परिश्रम से मिलता है। इसलिये मैंने कहा है कि स्त्रियां साधु हैं स्त्रियां धन्य हैं। २८-२६। इस अत्यन्त दुष्ट कलियुग में यही एक महान गुण है कि इस युग में केवल श्री कृष्ण चन्द्र का नाम संकीर्तन करने से मनुष्य परमपद प्राप्त कर लेता है। ४०।

युगधर्म श्री मद्भागवत—स्कन्ध १२ अ० ३

केनोपायेन भगवान् कलेर्दोषान् कलौ जनाः।

धमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ।१६

युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलय कल्पयोः ।

कालस्येश्वर रूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ।१७।

श्री शुक उवाच

कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः ।

सत्यं दया तपो दानमिति पाद विभोर्नृप ।१८।

सन्तुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः ।

आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः ।१९।

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ।

अधर्मपादैरनृत हिंसासन्तोष विग्रहैः ।२०।

तदा क्रियातपो निष्ठा नातिहिंस्रा न लम्पटाः ।

त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ।२१।

तपः सत्य दया दानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ।

हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्म लक्षणैः ।२२।

यशस्विनो महाशालाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ।

आढ्या कुटुम्बिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः ।२३।

कलौ तु धर्म हेतूनां तुर्यांशोऽधर्म हेतुभिः ।

एधमानैः क्षीयमानो ह्यन्ते सोपि विनङ्क्ष्यति ।२४।

तस्मिँल्लुब्धा दुराचारा निर्दया शुष्कवैरिणः ।

दुर्भगा भूरि तर्षाश्च शूद्रदाशोत्तराः प्रजाः ।२५।

सत्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ।

कालसञ्चोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ।२६।

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद् रुचिः ।२७।
यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनाम् ।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ।२८।
यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः ।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ।२९।
यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ।३०।
यस्मात् क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ।
कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ।३१।
दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखण्डदूषिताः ।
राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ।३२।
अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ।
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ऽत्यर्थ लोलुपाः ।३३।
ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ।
शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ।३४।
पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः ।
अनापद्यपि मंस्यन्ते वार्तां साधुजुगुप्सिताम् ।३५।
पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ।
भृत्यं विपन्नं पतयः कौलंगाश्चा पयस्विनी ।३६।
पितृ भ्रातृ सुहृज्ज्ञातीन् हित्वा सौरत सौहृदाः ।
नानान्दृश्याल संवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौनराः ।३७।

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोप जीविनः ।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ।३८।
नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिताः ।
निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ।३९।
वासोऽन्नपानशयन व्यवायस्नानभूषणैः ।
हीनाः पिशाच सन्दर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ।४०।
कलौ काकिणिके ऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि ।४१।
न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ।
पुत्रान् सर्वार्थकुशलान् क्षुद्राः शिश्नोदरम्भराः ।४२।
कलौ न राजञ्जगतां परं गुरुं त्रिलोकनाथानत पाद पङ्कजम् ।
प्रायेण मर्त्या भगवन्त मच्युतं यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्न चेतसः ।४३।
यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ।४४।

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः ।४५।
श्रुतः सङ्कीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा ।
नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ।४६।
यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् ।
एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ।४७ ।
विद्यातपः प्राणनिरोध मैत्री तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ।४८।

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशव।
म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परांगतिम् ।४६।
म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान् परमेश्वरः।
आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ।५०।
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परंव्रजेत् ।५१।
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।५२।

राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से कहा है कि हे भगवन् ये लोग कलियुग में कलियुग के बढ़े हुए दोषों को किस उपाय से दूर कर सकेंगे वह उपाय ठीक-ठीक बताइए ।१६। तथा युग-युग के धर्म, प्रलय व कल्प का प्रमाण और ईश्वर रूप विष्णुमूर्ति महात्मा काल की गति कहिये ।१७। श्री शुकदेव जी ने कहा कि हे महाराज सत्ययुग में उस युग के लोगों का धारण किया हुआ धर्म चार चरणवाला प्रवृत्त होता है। सत्य, दया, तप और अभयदान ये चार धर्म के चरण हैं।१८। सत्ययुग में लोग प्रायः संतोषी, दयालु, सबसे मित्र भाव रखने वाले, शान्त, जितेन्द्रिय, दुःखादि का सहन करनेवाले, आत्माराम, समदृष्टि और आत्माभ्यास में परिश्रम करनेवाले होते हैं ।१९। त्रेतायुग में धीरे-धीरे मिथ्याभाषण, हिंसा, असन्तोष, और विग्रह (कलह) इन चार अधर्म के चरणों से धर्म के चरणों में से चौथा २ भाग क्षीण होता जाता है ।२०। त्रेतायुग में प्रायः लोग क्रिया व तपकी निष्ठावाले न तो अति हिंसक और न अति लंपट, धर्म, अर्थ, और काम इन तीनों

पुरुषार्थ में लगे हुए और वेदत्रयी के हेतु वृद्ध माने जाते और ब्राह्मण वर्ण जिनमें मुख्य हैं ऐसे होवेंगे ।२१। द्वापरयुग में असंतोष, हिंसा, मिथ्याभाषण और द्वेष इन अधर्म के चार चरणों के निमित्त तप, दया, सत्य और दान इन धर्म के चार चरणों में से आधा आधा भाग क्षीण हो जाता है ।२२। इसलिये द्वापरयुग में लोग प्रायः यशस्वी बड़े गृहस्थ, वेद पढ़ने में प्रीतिवाले, धनाढ्य, कुटुम्बवाले, आनन्द युक्त और ब्राह्मण व क्षत्रिय जिनमें प्रधान माने जाते हैं, ऐसे होवेंगे ।२३। कलि-युग में तो असन्तोष, हिंसा, मिथ्या-भाषण, और द्वेष ये चार अधर्म के चरणोंकी वृद्धि के हेतु धर्म के चरणों का चौथाभाग अवशेष रह जाता है, तो भी अन्त में क्षीण होता २ बिलकुल नष्ट हो जाता है ।२४। कलियुग में लोग लोभी, दुराचारी, निर्दयी, वृथा वैर करनेवाले, दुर्भाग्य, अति-तृष्णावाले और शूद्र व दास जिनमें उत्तम माने जाते हैं ऐसे होंगे ।२५। सत्व, रज, और तम ये तीन गुण पुरुष में दीख पड़ते हैं और वे काल की गति से चित्त में सदा फिरते रहते हैं । २६ । जब मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ सत्व गुण में अतीव प्रवृत्त हो तब सत्ययुग जानना जिससे ज्ञान व तप में रुचि हुआ करती है । २७ । जब देहधारियों की भक्ति यानी रुचि काम्य कर्मों में होवे तब रजोगुण की प्रवृत्तिवाला त्रेतायुग जानना । २८ । जब लोभ, असंतोष, मान, दंभ, मत्सर और काम्य कर्मों में प्रवृत्ति होवे तब रजोगुण और तमोगुणवाला द्वापर युग जानना । २९ । जब लोकों में कपट, झूठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख, शोक, मोह, भय और दीनता होवे तब तमोगुणी कलियुग जानना । ३० । कलियुग के लोग मंदमति, मंदभाग्य,

अति आहार करनेवाले, कामी और निर्धन होवेंगे तथा स्त्रियां व्यभिचारिणियां और दुष्टा होवेंगी।३१। देश में चोर बहुत होवेंगे, वेद पाखंड से दूषित हो जायेंगे, राजा प्रजा को खानेवाले और ब्राह्मण उपस्थ तथा उदर के कामों में तत्पर रहेंगे। ३२। ब्रह्मचारी शौच और आचार से भ्रष्ट होवेंगे, कुटुंबी यानी गृहस्थी आप भीख मांगेंगे, तब दूसरों को भिक्षा देने की तो बात ही कहां रहेगी तपस्वी लोग वन छोड़कर गांवो में रहेंगे, संन्यासी धन आदि के लोभी होवेंगे। ३३। स्त्रियां नाटी बहुत खानेवाली, बहुत छोकरा छोकरी पैदा करनेवाली, निर्लज्ज, निरंतर कडुए वचन बोलनेवाली, बड़ी चोटी, बड़ी हठीली और बड़ी माया यानी छल-बल जाननेवाली होवेंगी।३४। कपट करनेवाले नीच नीच व्यौपार करेंगे, सबलोग आपत्काल बिना भी सत्पुरुषों की धिक्कार की हुई वृत्ति को उत्तम मानेंगे। ३५। स्वामी सर्वोत्तम होने पर भी यदि वह निर्धन हो जायगा तो उसको छोड़कर चाकर (नौकर) चले जायंगे ऐसे ही नौकर में आपदा आ पड़ेगी तो पुराना परंपरा का होने पर भी स्वामी उसको छोड़ देंगे, जो गौ दूध नहीं देगी उसे उसके स्वामी छोड़ देंगे। ३६। कलियुग में पिता, भाई, सम्बन्धी और जातिवालों को छोड़कर केवल सूरत सम्बंधी स्नेह को रखनेवाले और स्त्रियों के परतंत्र हुए दीन लोग साले सालियों के साथ एक मत रहेंगे। ३७। विष्णुपुराण में लिखा है कि सास ससुर को गुरु मानेंगे और साले सालियों को नीज मानेंगे। तपस्वियों का-सा बेष बनाकर जीविका करने वाले शूद्र दान लेवेंगे और धर्म को नहीं जाननेवाले लोग ऊँचे उत्तम आसन पर बैठकर धर्म का उपदेश

करेंगे । ३८ । कलियुग में जब पृथ्वी पर अन्न नहीं रहेगा तब अनावृष्टि के भय से दुःखी और नित्य दुर्भिक्ष (अकाल) व कर (टैक्स) से पीड़ित प्रजा सदा उद्विग्न मन रहेगी । ३९ । वस्त्र, अन्न, जल, शय्या, मैथुन, स्नान और आभूषणों से हीन प्रजा कलियुग में पिशाचों के सदृश हो जायगी । ४० । कलियुग में बीस कौड़ी यानि छदाम धन के वास्ते भी कलह करके स्नेह त्याग देनेवाले लोग अपने प्यारे प्राणों को भी छोड़ देंगे और अपने बन्धुओं को भी मारेंगे । ४१ । मनुष्य अपने वृद्ध माता पिता की रक्षा नहीं करेंगे । शिश्न तथा उदर को ही तृप्त करनेवाले माता पिता सर्व प्रकार के विषयों में निपुण अपने पुत्रों की रक्षा नहीं करेंगे । ४२ । हे राजा त्रिलोकी के अधिपति भी जिनके चरणारविंद को प्रणाम करते हैं ऐसे जगत् के गुरु अच्युत भगवान की प्रायः पाखंड से विक्षिप्त चित्त हो जाने के कारण लोग कलियुग में पूजा नहीं करेंगे । ४३ । मनुष्य भगवान का नाम मरते समय आपत्ति काल में पराधिन और आतुर होने पर भी यदि लेवे तो शीघ्र ही कर्म रूपी वंधनों से मुक्त होकर (प्रतिबन्धों से छूटकर) उत्तम गति को प्राप्त होता है उन भगवान की लोग कलि युग में पूजा नहीं करेंगे । ४४ । अब कलियुग के दोष मिटाने के उपाय कहता हूँ सो सुनो—चित्त में विराजे हुए पुरुषोत्तम भगवान कलियुग के किये हुए और द्रव्य देश तथा चित्त से उत्पन्न हुए मनुष्यों के सब दोषों को हर लेते हैं । ४५ । जो मनुष्य भगवान का श्रवण कीर्तन ध्यान पूजन और आदर करते है उनके हृदय में प्राप्त होकर हरि भगवान् मनुष्यों के दशसहस्र (दस हजार) जन्मों के पापों को भी नाश कर देते हैं । ४६ । जैसे सुवर्ण में रहा हुआ अग्नि

अन्य धातुओं के संबंध से हुए मलिनपन को नाश कर देता है वैसे ही हृदय में प्राप्त हुए हरि (भगवान) हृदय की अनिष्ट वासनाओं को नाश कर देते हैं। ४७ जैसा यह अन्तःकरण हरि (भगवान) के हृदय में प्राप्त होने से अत्यंत शुद्धि को प्राप्त होता है वैसा विद्या तप, प्राणायाम, मैत्री तीर्थ स्थान, व्रत, दान. व जप करने से कदापि नहीं होता। ४८। हे राजा आपकी मृत्यु निकट आ गई है इसलिए सर्वभाव से सावधान हो-कर केवल भगवान का हृदय में ध्यान करिये क्योंकि भगवान का ध्यान करने से आप को उत्तम गति मिलेगी। ४९। महाराज जिसकी मृत्यु निकट आजाय उस मनुष्य को सब के आत्मा और सब के आश्रय परमेश्वर प्रभु भगवान का ध्यान करना चाहिये क्योंकि परमेश्वर का ध्यान करने से प्रभु स्व स्वरूप को प्राप्त कर देते हैं। ५०। हे राजा दोषों के भंडाररूप इस कलियुग में एक महान् (बड़ा भारी) गुण है कि इस कलियुग में केवल भगवान का कीर्तन करने से ही मनुष्य मुक्तसंग होकर परमपद को प्राप्त हो जाता है। ५१। सत्ययुग में भगवान का ध्यान करने से त्रेतायुग में यज्ञों द्वारा यजन करने से, द्वापर युग में भगवान की पूजा करने से जो फल मिलता है वही फल कलियुग में केवल भगवान के कीर्तन करने से मिल जाता है। इसलिए कलियुग मे योग यज्ञ तप आदि के प्रपंचों में न पड़ कर केवल भगवान का स्मरण कीर्तन करना चाहिये। ५२।

युगों का धर्म

श्री गोस्वामी तुलसी दास कृत रामायण

बाल कांड

विधि निषेध मय कलिमल हरणी। कर्म कथा रविनंदिनी बरणी॥
हरिहर कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
जे जनमे कलिकाल कराला। करतब वायस वेष मराला॥
चलत कुपंथ वेदमग छांड़े। कपट कलेवर कलिमल भांड़े॥
कलि बिलोकि जगहित हर गिरिजा। शावर मंत्र जाल जिन सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू॥
चहुयुग चहुश्रुति नाम प्रभाउ। कलि विशेष नहिं आन उपाऊ॥

राम नाम को कल्प तरु, कलि कल्याण निवास।
जो सुमिरत भय भागते, तुलसी तुलसीदास॥

विधि (जिसमें अच्छे कामों की आज्ञा है उसे विधि कहते हैं) निषेध (जिसमें बुरे कामों का त्याग है उसे निषेध कहते हैं) सहित कलि के पापों को दूर करने वाली जो कर्मों की कथा है, उसी को यमुनाजी ने वर्णन किया है। विष्णु तथा शङ्कर की कथा ये तीनों मिलकर त्रिवेणी-रूप शोभायमान होने से श्रवण करते ही अनंद मङ्गल की देनेवाली है। जो मनुष्य कराल कलिकाल में जन्मे हैं उनका करतब कौओं का-सा और वेस हंसों का-सा है। वे वेदमार्ग छोड़कर कुमार्ग में (कलिमल ग्रसेउ धर्म सब लुप्त भय सद् ग्रंथ। दंभिन निजमत कल्प करि प्रगट कीन्ह बहु पंथ) चलते हैं। उनका कपट का शरीर है अर्थात् बड़े कपटी हैं और कलिमल के पात्र हैं। कलियुग को देखकर संसार के हित के

लिये महादेव पार्वति ने शावर मंत्र को उत्पन्न किया, उनमें अक्षरों का मेल नहीं और न विधिपूर्वक अर्थ है, परन्तु जप करने से ही शङ्कर के प्रताप का प्रभाव प्रगट होता है। चारो युग, चारो वेद में नाम का प्रभाव है किन्तु कलियुग में विशेष कर नाम को छोड़ और उपाय नहीं। रामनाम रूपी कल्पवृक्ष कलिकाल में कल्याण का स्थान है, जिसके स्मरण करने से तुलसीदास भांग के समान अयोग्य वस्तु से तुलसी के पत्र के समान भगवान का प्यारा हो गये।

चहुयुग तीनि काल तिहुं लोका। भय नाम जपि जीव विशोका॥
वेद पुराण संत मत एहू। सकल सुकृतफल नाम सनेहू॥
ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे॥
कलि केवल मलमूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत शमन सकल जगजाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहि कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥

राम नाम नरकेसरी, कनक कशिपु कलिकाल।
जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालहि दलि सुरसाल॥

चारोयुग, तीन काल और तीनों लोकों में नाम को जपकर जीव शोक रहित होता है, वेद पुराण और संतोका मत है कि नाम में स्नेह करना सब पुरायों का फल है। सतयुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से, और द्वापर में पूजन से भगवान प्रसन्न होते हैं। कलियुग केवल मल की जड़ है, उस मलिन पाप के समुद्र में मनुष्यों का मन मछली के समान लग रहा है,

नाम कल्पवृक्ष है, कलियुगमें नाम के स्मरण करते ही जगत के सम्पूर्ण जाल नाश हो जाते हैं। राम का नाम ही कलि में मनोरथ का दाता और लोक तथा परलोक में माता-पिता के समान हित करने वाला है। कलि में कर्म, भक्ति तथा ज्ञान कुछ नहीं है, केवल राम के नाम का एक सहारा है। कलियुग कपट का घर दूसरा कालनेमि राक्षस है और राम का नाम (उसके मारने के लिये) श्रेष्ठ बुद्धि वाले समर्थ हनुमान हैं। राम का नाम नरसिंह रूप है, कनककशिपु कलिकाल है, प्रह्लाद भक्तजन हैं और भगवान का नाम शत्रुओं को मार कर रक्षा करता है (भाव यह है कि जैसे नरसिंह जी कनककशिपु शत्रु को मारकर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की वैसे ही राम का नाम कलिरूपी शत्रू को मार कर भक्त जनों की रक्षा करता है)। रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जंतुः। कलौयुगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः। "राम" इन दो अक्षरों को सदा आदरपूर्वक जपने से प्राणी मुक्ति पाता है, कलियुग में पापी मनुष्यों को और धर्म में अधिकार नहीं है। प्रह्लाद जी पिता से कहे हैं—रामनाम जपतां कुतो भयं सर्व पाप शमनैक भेषजम्। पश्य तात मम गात सन्निधौ पावकोपि सलिलायतेऽधुना। हे पिता जी सब पापों को दूर करने वाली महौषधि "राम नाम" जपने वालों को भय कहां? देखिए मेरे शरीर के पास अग्नि भी जल के समान शीतल लगती है।

भाय कुभाय अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिशि दशहूं॥
काम कोह कलिमल करिगण के। केहरिशावक जन मन वन के॥
कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड।

दहन राम गुण ग्राम इमि, इंधन अनल प्रचंड ॥

भाव से वा कुभाव से (प्रीति से वा वैर से) इर्षा से वा आलस्य से नाम को जपते ही दसों दिशाओं में कल्याण होता है। सन्तों के मनरूपी वन में काम क्रोध और कलि के पापरूपी हाथियों के समुह के लिये भगवान् का नाम सिंह के बच्चे के सदृश है, जैसे सिंह का बच्चा हाथियों को भगा देता है वैसे ही भगवान् का नाम कलि के पापों को भगा देता है। रामजी के गुणों का समुह कलियुग के खोटे काम, बुरे तर्क, कुचाल, कपट, दंभ और पाखंड रूपी काठ को भस्म करने के लिये प्रचण्ड अग्नि के समान है।

उत्तर कांड

पूर्व कल्प में एक प्रभु, कलियुग मलकर मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत, सकल निगम प्रतिकूल॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायण सब नर नारी।
कलिमल ग्रसेउ धर्म सब, लुप्त भये सद् ग्रन्थ।
दंभिन निजमत कल्प करि, प्रकट कीन्ह बहु पंथ।
भयउ लोक सब मोह वश, लोभ ग्रसेउ शुभ कर्म।
सुनु हरियान ज्ञान निधि, कहौं कछुक कलिधर्म।

पूर्व कल्प में एक कलियुग पापों की जड़ था, जिसमें सब स्त्री पुरुष अधर्म से प्रीति करनेवाले और वेद के विरुद्ध आचरण करने वाले थे। वह कलिकाल बड़ा कठिन था उस कलिकाल में जितने स्त्री पुरुष थे सबों की प्रीति पापों में थी। कलियुग के पापों ने सब धर्म ग्रस लिये जिससे अच्छे ग्रंथ तो लोप हो गये और पाखंडियों ने अपनी बुद्धि से

कल्पना कर कर के बहुत से पंथ चला दिये। सब लोग मोह के वश हो गये, लोभ ने अच्छे २ कर्मों को ग्रस लिये, हे ज्ञान निधि गरुड़ जी कलियुग के थोड़े से धर्मों को कहता हूं सुनिये।

कलियुग की महिमा।

बरन धर्म नहीं आश्रम चारी। श्रुति बिरोधरत सब नर नारी।
द्विज श्रुतिबंचक भूप प्रजासन। कोउ नहीं मानु निगम अनुसासन।
मारग सोइ जाकह जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ताकहँ संत कहै सब कोई।
सोइ सयान जो परधनहारी। जो कर दंभ सो बड आचारी।
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना।
निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी।
जाके नख अरु जटा विशाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।

अशुभ वेष भूषण धरे,भक्ष्याभक्ष्य जे खाहिं।
ते जोगी ते सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं।
जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्यता।
मन क्रम वचन लबार, ते वक्ता कलिकाल मह।

नारि बिबस नर सकल गुसाँई। नाचहिं नट मर्कट की नाईं।
शूद्र द्विजन्हि उपदेसहि ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।
सब नर काम लोभरत क्रोधी। देव विप्र गुरु सत विरोधी।
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि परपुरुष अभागी।
सौभागिनी विभूषण हीना। विधवन्हि के शृंगार नवीना।
गुरु सिष अन्ध बधिर कै लेखा। एक न सुनै एक नहिं देखा।

हरै शिष्यधन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई।
मातु पिता बालकन्हि बुलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं।

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौडिउ कारण मोहवस, करहिं विप्र गुरु घात।
वाद शूद्र कर द्विजन्हसन, हम तुमते कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो विप्रवरि, आंखि दिखावहिं डाटी।

परतिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।
तेइ अभेदवादी ज्ञानीनर। देखा मैं चरित्र कलि युग कर।
आपु गये अरु आनहिं घालहिं। जो कोइ श्रुति मारग प्रतिपालहिं।
कल्प कल्प भरि इक इक नर्का। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तर्का।
जे वर्णाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।
नारि मुई गृह सपती नासी। मुंड मुँडाइ भये संन्यासी।
ते विप्रन सन पांव पुजावहिं। उभयलोक निजहाथ नसावहिं।
विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।
शूद्र करहिं जप तप व्रत नाना। वैठे वरासन कहहिं पुराना।
सब नरकल्पित करहिं अचारा। जाइ न वरनि अनीति अपारा।

भए वरन संकर कलिहिं, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप दुख पावहिं, भय रुज शोक वियोग।
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ, संयुत ज्ञान विवेक।
तेन चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक।

छंद—बहु धाम सँवारहिं जोग जती, विषया हरि लीन्हि रही विरती।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही, कलि कौतुक तात न जात कही।

कुलवन्ति निकारहिं नारि सती, गृह आनहिं चेरिहिं चेर गति ।
सुत मानहिं मातु पिता तबलौं, अबलानन दीख नहीं जबलौं ।
ससुरारि पियारि लगी जबते, रिपु रूप कुटुम्ब भयो तबते ।
नृप पाप परायन धर्म नहीं, करु दण्ड विडंब प्रजा नितहीं ।
धनवंत कुलीन मलीन अपी, द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी ।
नहिं मान पुरानहिं वेदहिंसो, हरि सेवक संत सही कलिसो ।
कविवृंद उदार ध्वनी न सुनी, गुन दूषक बात न कोपि गुनी ।
कलि बारहिं बार दुकाल परैं, बिनु अन्न दुखी सबलोग मरैं ।

सुनु खगेस कलि कपट हठ, दंभ द्वेष पाखंड ।
काम क्रोध लोभादि मद, व्यापि रहेउ ब्रह्मंड ॥
तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख ब्रत दान ।
देव न बरषै धरनिपर, बये न जामहिं धान ॥

अबला कचभूषण भूरि छुधा, धनहीन दुखी ममता बहूधा ।
सुख चाहहिं मूढ न धर्म रता, मति थोरि कठोर न कोमलता ।
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं, अभिमान विरोध अकारण ही ।
लघु जीवन संवत पंच दसा, कल्पांत न नाश गुमान असा ।
कलिकाल विहाल किये मनुजा, नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ।
नहिं तोष विचार न सितलता, सब जाति कुजाति भये मगता ।
इरषा परुषा छल लोलुपता, भरिपूरि रही समता विगता ।
सब लोग वियोग विसोक हुए, बरनाश्रम धर्म अचार गए ।
दम दान दया नहिं जान पनीं, जड़ता परवंचकता सु घनीं ।
तनुपोषक नरि नरा सगरे, परनिंदक जो जगमें बगरे ।

सुनु व्यालारि कराल कलि, मल अवगुन आगार।
गुनौ बहुत कलिकालकर, बिनु प्रयास निस्तार।
कृतयुग त्रेता द्वापरहुँ, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलिहिं हरि, नामते पावहिं लोग।

कृतयुग सब जोगी विज्ञानी। करि करि ध्यान तरहिं भव प्रानी।
त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं।
द्वापर करि रघुपतिपद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा।
कलि केवल हरिगुन गनगाहा। गावत नर पावहिं भवथाहा।
कलियुग जोग यज्ञ नहिं ज्ञाना। एक अधार राम गुन गाना।
सब भरोस तजि जो भजु रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं।
सो भव तरु कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलिमाहीं।
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुराय होइ नहिं पापा।

कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर करि विस्वास।
गाइ राम गुनगन विमल, भवतरु विनहिं प्रयास।
प्रगट चारि पद धर्म के, कलिमह एक प्रधान।
येन केन विध दीनहुं, दान करै कल्यान।

कृतयुग धर्म होहिं सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे।
सुद्धतत्त्व समता विज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।
सत्व बहुत कछु रज रति कर्मा। सब विध शुभ त्रेता कर धर्मा।
बहुरज स्वल्प सत्य कछु तामस। द्वापर हर्ष शोक भय मानस।
तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुं ओरा।
बुध जुग धर्म जानि मनमाहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं।

काल धर्म नहिं व्यापहि ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही।
नटकृत कपट विकट खगराया। नट सेवकहिं न व्यापै माया।
हरिमाया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस विचारि मनमाहिं।

चारो वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) उनके धर्म और चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) कलियुग में नहीं रहते। सब स्त्री पुरुष वेद के विरुद्ध चलने वाले होते हैं। ब्राह्मण वेदवंचक अर्थात् उलटे अर्थ कर कर के लोगों को ठगते, राजा प्रजा को लूटते, वेद की आज्ञा को कोई नहीं मानता। कलियुग में जिसको जो अच्छा लगे वही मार्ग है, पण्डित वही है जो गाल बजावे, झूठ बोले और पाखंड रचे अर्थात् राम फटाका तिलक लगावे और गले में तुलसी की माला पहिरे उसे सब कोई सन्त कहते हैं। जो पराया द्रव्य हरे वही चतुर और जो पाखंड करे वही बड़ा आचारी कहाता है। जो झूठ कहना और मसखरी करना जानता है वही कलियुग में गुणवान् कहाता है। जो आचार रहित वेद मार्ग का त्यागने वाला होता है वही कलियुग में ज्ञानी और वैरागी कहाता है। जिसके नख और जटा बड़े २ हों वही कलियुग में प्रसिद्ध तपस्वी कहा जाता है। जो अशुभ अर्थात् जातिकुलमर्यादारहित वेष और भूषण धारण करे, भक्ष्याभक्ष्य खाये, पिये, वही मनुष्य योगी, वही सिद्ध, और वही कलियुग में पूजे जाते हैं। जो पराया का बुरा करे उसी का बड़प्पन और मान्यता होती है। जो मन, क्रम, वचन से लपाटिये होते हैं वही कलियुग में कथक्कड कहे जाते हैं। हे गोसांई, सब मनुष्य स्त्री के वश में रहते हैं, जैसे नट

बन्दर को नचाता है वैसे ही कलियुग के मनुष्य सब स्त्रियों के नचाये नाचते हैं। शूद्र ब्राह्मणों को ज्ञानोपदेश करते हैं, जनेऊ पहिरकर बुरे बुरे दान लेते हैं। सब मनुष्य कामी लोभी और क्रोधी होते हैं। देवता, ब्राह्मण, गुरू और सन्तों से विरोध करते हैं। अभागिनी स्त्रियां गुणवान् और सुन्दर पतियों को छोड़ कर पर पुरुष का सेवन करती हैं। सुहागिनी गहने नहीं पहिरती, विधवायें नित्य नवीन २ शृंगार करती हैं। गुरु शिष्य का अन्धे वहिरे का-सा हिसाब होता है; एक सुनता नहीं और एक को दीखता नहीं अर्थात् गुरु तो शिष्य के गुण अवगुण देखता नहीं, लोभ के मारे शिष्य कर लेता है, और जो गुरु कहता है उसे चेला सुनता नहीं।

गुरु शिष्य के धन को हर लेते हैं अर्थात् फुसला कर तन मन धन श्रीकृष्णार्पण करा लेते हैं और शोक को नहीं हरते, ऐसे गुरु घोर नरक में पड़ते हैं। माता पिता बालकों को बुलाते हैं और (जिस प्रकार) उनका पेट भरे वही कर्म सिखाते हैं। स्त्री पुरुष ब्रह्मज्ञान के बिना दूसरी बात नहीं करते, अर्थात् सब ब्रह्मज्ञानि होते हैं जिससे दान धर्म न करना पड़े और (आचरण ऐसे कि) अज्ञान के बस कौड़ी के लिये भी गुरु और ब्राह्मण का घात कर देते हैं। शूद्र लोग ब्राह्मणों से वाद विवाद अर्थात् बहस करते हैं कि क्या हम तुम से कुछ कम हैं। "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" जो ब्रह्मजाने वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है और डांट कर आँख दिखाते हैं। जो लोग पराई स्त्रियों से भोग करने वाले, छल में बड़े चतुर, अज्ञान, द्रोह और ममता में लिपटे हुए होते हैं वे ही अभेदवादी (अद्वैत वक्ता) और ज्ञानी कहलाते हैं। यह कलियुग का

चरित्र मैंने देखा है। आप तो नष्ट हुए सो हुए और दूसरे जो कोई वेदमार्ग का पालन करें उनको भी नष्ट करते हैं। (वे मनुष्य) जो वेद में तर्क करके दोष लगाते हैं, कल्प कल्प भर एक एक नरक में पड़ेंगे जो नीच जाति अर्थात् तेली, कोल कुम्भार, चांडाल, भील, और कलाल हैं जब उनकी स्त्री मर जाती है और घर की सब सम्पत्ति नाश हो जाती है तब वे मूंड़ मुड़ा कर (दमड़ी के गेरू में कपड़े रंग कर) संन्यासी हो जाते हैं और वे ब्राह्मणों से पैर पुजा कर दोनों लोकों को अपने हाथ नष्ट करते हैं। ब्राह्मण कोरे निरक्षरभट्टाचार्य, लोभी महानीच जाति के यहाँ भी भोजन करने वाले, कामी, आचार-रहित और मूर्ख होते हैं और वृषली के (जिसके मां-बाप ठीक नहीं उन के) पति बन जाते हैं (विप्राः शूद्रासमाचाराः सन्ध्यावन्दनवर्जिताः। शूद्रान्नभोजिनः क्रूराः वृषलीरतिकामुकाः अर्थात् ब्राह्मण शूद्र के से आचरण करेंगे सन्ध्यावन्दन छोड़ देंगे, शूद्रों के यहाँ खाते फिरेंगे बड़े क्रूर और वेश्यागामी होंगे, और धन के लोभ से अपने यहाँ की स्त्रियों को नीच जाति को दे देंगे) शूद्र लोग जप, तप, व्रत, दान करते हैं और सुन्दर आसन पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब मनुष्य कल्पना किये अर्थात् जो मन में आवै वही आचारण करते हैं और ऐसी ऐसी अधिक अनीति करते हैं कि वर्णन नहीं की जाती। कलियुग में मनुष्य बहुधा वर्णसंकर (जिनकी मां कोई बाप कोई) पैदा होते हैं, और सब मार्यादा-रहित हो पाप करते हैं, जिससे दुःख, भय, बीमारी, शोक और वियोग भोगते हैं। वेदकी संमति और ज्ञानवैराग्ययुक्त ऐसा जो रघुनाथजी की भक्ति का मार्ग है उसपर तो मनुष्य मोह के (न मां दुष्कृतिनो मूढाः

प्रपद्यन्ते नराधमाः । मायया ऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः। अर्थात् माया के वश जिनका ज्ञान नष्ट हो गया और असुरपने को प्राप्त ऐसे दुराचारी नीच मनुष्य मेरी शरण नहीं आते) वस होकर चलते नहीं और हठ करके अनेक नये मत चलाते हैं। योगी और यती बहूत से मन्दिर (मकानों को) सम्हालते हैं, उनका जो वैराग्य था सो विषयों ने हर लिया है, तपस्वी, धनवान और गृहस्थ दरिद्री होते हैं। हे प्यारे कलियुग के कौतुक कहेन हीं जाते। अच्छे कुल की पतिव्रता स्त्रियों को निकाल देते हैं और घर में चेरियों को चुरा चुरा कर लाते हैं और माता-पिता को पुत्र तभी तक हैं जबतक स्त्री का मुख नहीं दिखाई देता। जबसे ससुराल प्यारी लगी तभी से कुटुम्ब वैरी का रूप हो जाते हैं, राजा लोग पाप में प्रीति करते हैं, धर्म नहीं रहता, नित्यही प्रजापर दंड करते और सताते हैं। धनवान ही अच्छे कुल के गिने जाते हैं चाहे मलिन ही क्यों न हों। ब्राह्मणों का चिह्न जनेउ और तपस्वियों का नग्न रहना रह जाता है जो वेद पुराण को न माने वही कलियुग में सच्चा संत और भगवानका सेवक कहाता है। श्रेष्ठ कवियों के समाज की ध्वनि तो सुनाई नहीं देती गुणों में दोष निकालने वाले रह जाते हैं, बात का जानने वाला गुणी कोई नहीं रहता, कलियुग में वारंवार अकाल पड़ते हैं और बिना अन्न के दुखी होकर सब लोग मरते हैं। हे गरुड़ जी सुनो कलियुग में कपट, हठ, दंभ, द्वेष, पाखंड, काम, क्रोध, लोभ और अभीमान आदि संसार में व्याप्त रहते हैं। मनुष्य तामसी धर्म (अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते। असत्कृत मवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्। जो दान असत्कार और अवज्ञायुक्त देशकाल के बिना

कुपात्रों को दिया जाता है उसे तामस दान कहते हैं) जप, तप, व्रत, यज्ञ और दान करते हैं जिससे पृथ्वी पर मेघ नहीं बरसते और बोए हुए धान नहीं उपजते। कलियुग में स्त्रियों के बाल ही गहने होते हैं, भूख बहुत लगती है, मनुष्य धन से रहित दुखी होते हैं, ममता बहुत होती है, मूर्ख सुख चाहते हैं, और धर्म में प्रीति नहीं करते, बुद्धि थोड़ी होती है, कठोर होते हैं, उनमें कोमलता नहीं होती। मनुष्य रोगों से दुखी रहते हैं, आनन्द कहीं नहीं, बिना कारण ही अभिमान और विरोध करते हैं, थोड़ा जीवन दश पांच वर्ष का होता है जिसमें अभिमान ऐसा होता है कि कल्प के अन्त में भी नाश न होगा। कलियुग ने मनुष्यों को बिहाल कर दिये, कोई बहन बेटी को नहीं मानते, न संतोष है, न विचार है, न शितलता है, सब जाति कुजाति के मांगने वाले हो जाते हैं। ईर्षा, कठोरता, छल, और अति लोभ आदि भरपूर छाये रहते हैं और मिलनसारी का तो नाश हो जाता है, सब लोग वियोग में दुखी होते हैं और वर्ण और आश्रमों के धर्म और आचार चले जाते हैं। दम, दान, दया को कोई रत्ती भर नहीं जानता (जहां देखो वहां) मूर्खता और ठगई अधिक सुनी जाती है, सब स्त्री पुरुष शरीर के पोषण करने वाले होते हैं और संसार में पराई निन्दा करने वाले फैल जाते हैं। हे गरुड़जी सुनो कठीन कलियुग पाप और अवगुणों का स्थान है, पर कलियुग के गुण भी बहुत हैं जिनसे लोग बिना परिश्रम के ही संसार से पार हो जाते हैं। सतयुग, त्रेता और द्वापर में पूजा यज्ञ और योग से जो गति होती है वही गति कलियुग में लोग भगवान के नाम से पाते हैं। सतयुग में सब योगी और विज्ञानी

भगवान का ध्यान करके तरते हैं। त्रेता में मनुष्य बहुत से कर्म करते हैं और कर्मों को भगवान के अर्पण कर संसार से पार हो जाते हैं। द्वापर में रामचन्द्र जी के चरणों की पूजा करके मनुष्य संसार से तरते हैं, तरने का और कोई दूसरा उपाय नहीं रहता। कलियुग में केवल भगवान् के गुणों के समूहों के गाने से मनुष्य संसार की थाह पाते हैं। कलियुग में योग, यज्ञ और ज्ञान कुछ नहीं हैं, केवल रामचन्द्र जी के गुणों का गान ही एक आधार है। जो सब भरोसे को छोड़ कर एक रामचन्द्र जी का भजन करते हैं और स्नेह सहित उनके गुणों के समूहों का गान करते हैं, वे संसार से तर जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं; नाम का प्रताप कलियुग में प्रत्यक्ष है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप है, कि मानसिक पुण्य होता है और पाप नहीं होता। जो मनुष्य विश्वास करे तो कलियुग के (कलेर्दोषनिधे राजन्नस्तिह्येको महागुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्। दोषों के निधि ऐसे कलियुग में एक बड़ा भारी गुण है कि राम कृष्ण के कीर्तन से ही मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है) समान और युग नहीं, जिसमें रामचन्द्र जी के निर्मल गुणों को गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम के तर जाते हैं। धर्म के चार चरण प्रगट हैं अर्थात् तप, ज्ञान, यग और दान, उनमें से कलियुग में एक प्रधान है अर्थात् जैसे बने वैसे दीनों को दान करने से कल्याण होता है। सतयुग आदि चारो युगों में धर्म तो सब के हृदय में प्रसन्न रामचन्द्रजी की माया की प्रेरणा से होते हैं। सतयुग में मनुष्य शुद्ध सतोगुण, समता और विज्ञान के प्रभाव से मन में प्रसन्न रहते हैं। और सतोगुण बहुत और रजोगुण में थोड़ी प्रीति हो ऐसे सब काम

सुन्दर त्रेता के धर्म हैं। द्वापर में बहुतसा रजोगुण थोड़ा तमोगुण होता है, उससे मन हर्ष शोक और भययुक्त रहता है। कलियुग में तमोगुण बहुत और रजोगुण थोड़ा रहता है (सतोगुण का नाम नहीं)। इस कारण कलि प्रभाव से चारों ओर विरोध फैल जाता है। बुद्धि-मान् युगों के धर्मों को मन में जान कर अधर्म से प्रीति छोड़ धर्म करते हैं। कालकर्म उसे नहीं व्यापता जिसकी रामचन्द्र जी के चरणों में विशेष प्रीति होती है। हे गरुड जी नट का किया हुआ कपट विचित्र होता है, परन्तु वह नट के सेवक को नहीं व्यापता। भगवान् की माया के किये हुये दोष गुण बिना भगवान् के भजन के नहीं जाता ऐसा मन में विचार सब कामनाओं को छोड़ कर रामचन्द्र जी का भजन करना चाहिये।

अध्यात्म यज्ञ।

वेद में तीन काण्ड हैं—कर्म, उपासना और ज्ञान। कर्म से ही मन शुद्ध होता है, उससे उपासना में अधिकार, उसके द्वारा ईश्वरसान्निध्य और ज्ञान से मोक्ष होती है (ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः) वैदिक कर्म मुख्य कर यज्ञ है। वह दो प्रकार का है अभ्यन्तर और वाह्य। नवीन अधिकारी उसको वाह्य उपकरण से करते हैं, और ज्ञानी उसको मन में करते हैं। स्थूल वाह्य अभ्यास से अन्तर अभ्यास दृढ़ होता है, वाह्य साधन दर्श-पौर्णमास से अग्नि होत्रपर्यन्त लिखे हैं, अब ज्ञानियों के अन्तर साधन को दिखाते हैं कि, जिस यज्ञ को ज्ञानी ब्राह्मणादि निरन्तर सम्पादन करते हैं यूपरशना से शोभित इस शरीर यज्ञ का यजमान पत्नी ऋत्विज अध्वर्यु होता ब्राह्मणाच्छंसी इत्यादि वर्णन करते हैं जितनी सामग्री यज्ञ

में होती हैं वह इस शरीर यज्ञ में वर्णन करते हैं यथा हि—

अस्य शरीरयज्ञस्य यूपरशना शोभितस्य आत्मा यजमानः बुद्धिः पत्नी वेदा महर्त्विजः प्राणो ब्राह्मणाच्छंसी, अपानः प्रतिप्रस्थाता, व्यानः प्रस्तोता, समानो मैत्रावरुणः, उदान उद्गाता, अहङ्कारोऽध्वर्युः, होता चित्तं, शरीरं वेदिः, नासिकोत्तर वेदिः, मूर्द्धा द्रोणकलशः, दक्षिनहस्तः स्रुवः, वाम-हस्त आज्यस्थाली, श्रोत्रे आघारौ, चक्षुषी आज्यभागौ, ग्रीवाधारा पोता, तन्मात्राणि सदस्याः, महाभूतानि प्रयाजाः, भूतान्यनुयाजाः, जिह्वेडा, दन्तोष्ठौ सूक्तवाकः, तालुः शंयोर्वाकः, स्मृतिर्दयाक्षान्तिरहिंसा, पत्नी संयाजाः, ओङ्कारो यूपः, आशा रशना, मनोरथः, कामः पशुः, केशा दर्भाः, बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि, कर्मेन्द्रियाणि हवींषी, अहिंसा इष्टयः, त्यागो दक्षिणा, अवभृथं मरणात्।

सर्वाह्यस्मिन्देवताः शरीरेऽधिसमाहिताः।
वाराणस्यां मृतो वापि इदं वा ब्रह्म यः पठेत्॥

एकेन जन्मना जन्तुर्मोक्षञ्च प्राप्नुयादिति। प्राणाग्नि होत्रोपनिषद चार खण्डों में है यहाँ हमने कार्यमात्र लिखा है। सूर्य अग्नि मूर्धा स्थान में स्थित हैं, दर्शनाग्नि आहवनीय रूप से मुख में स्थित है, जाठराग्नि दक्षिणाग्नि है, यह हृदय में स्थित है, कोष्ठाग्नि गार्हपत्य रूप से नाभि मध्य में स्थित है, इस शरीर में मुख्य तीन नाडी हैं, इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना। ललाट में स्थित चन्द्र मण्डल से नाड़ी द्वारा च्युत हुए शुक्र रूप अमृत से प्रजा उत्पत्ति के कर्मवाला पुल्लिङ्ग मूल अग्नि-कुण्ड मध्य में है, उस अग्निकुण्ड में पतित हुआ शुक्र प्राण से आकृष्ट हो लिङ्गाग्र द्वारा गर्भाशय में प्रवेश कर प्रजा होता है, इससे यह शरीर

अग्निषोमात्मक है। अब इसके यजमानादि कहते हैं, अस्येति—यूपरशना-शोभित शरीर यज्ञ का आत्मा यजमान है, बुद्धि पत्नी, वेद महाऋत्विज, प्राण ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विक, अपान प्रतिप्रस्थाता ऋत्विज सहकारी, व्यान प्रस्तोता स्तुति करनेवाला ऋत्विक्, समान मैत्रावरुण ऋत्विक्, उदान-उद्गाता ऋत्विक्, अहंकार अध्वर्यु, होता हवन करनेवाला चित्त, शरीर वेदि, नासिका उत्तर वेदी, मूर्द्धा शिर द्रोणकलश, दक्षिण हाथ स्रुव, बायां हाथ घृतस्थाली, दोनों कान आधार, दोनों नेत्र घृतभाग, गर्दनधारा पोता, (पावमानी पढ़ने वाला) तन्मात्रा सभासद, महाभूत प्रयाज (यज्ञस्तुति) पंचभूत अनुयाज्य, जिह्वा इडापात्र, दन्तोष्ठ—सूक्त-वाक्, तालु शंयोर्वाक् स्मृति दया, सहनशीलता अहिंसा यह पत्निसंयाज हैं, ओंकायूप, आशा रस्सी, मन रथ, कामही पशु, बाल कुशा, बुद्धिन्द्रिय यज्ञ के पात्र, कर्मेन्द्रिय हवि, अहिंसा इष्टि, त्याग दक्षिणा, देहरूप मल का दूर करना ही यज्ञान्त स्नान है, यदि कहा जाय कि देवता के बिना यज्ञ किस प्रकार होगा इस पर कहते हैं सब अधिदैव अध्यात्म है, चक्षु आदि में सूर्यादि देवता स्थित हैं इस यज्ञ को जो करते हैं वाराणसी में मृतक हुए के समान उनकी मोक्ष होती है, जो इसको पढ़ते हैं वह एक ही जन्म में मुक्त होते हैं। इस प्रकार से ज्ञान यज्ञ करने से मुक्ति होती है।

श्री कृष्ण भगवान ने गीता में द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, ज्ञानयज्ञ आदि अनेकों प्रकार के यज्ञों का वर्णन किये। सभी यज्ञों में ज्ञान यज्ञ को प्रधान कहे हैं। श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप। सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।

हे अर्जुन सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले यज्ञों से ज्ञान यज्ञ सब प्रकार श्रेष्ठ है क्योंकि हे पार्थ संपूर्ण यावन्मात्र कर्म ज्ञान में शेष होते हैं।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।

हे अर्जुन जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ठ को भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्। मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्नि-रहं हुतम्। मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामे वैष्यसि युक्त्वैवं मात्मानं मत्परायणः।

क्रतु अर्थात् श्रौतकर्म मैं हूँ यज्ञ अर्थात् पञ्च महायज्ञादिक स्मार्त कर्म मैं हूँ, स्वधा अर्थात् पितरों के निमित्त दिया जाने वाला अन्न मैं हूं, औषधि अर्थात् सब वनस्पतियाँ मै हूं, मन्त्र मैं हूं, घृत मैं हूं, अग्नि मैं हूँ, हवन रूप क्रिया भी मैं ही हूँ, इसलिए हे अर्जुन तू मेरे में मन लगा, मेरा भक्त होओ, मेरे पुजन के सहित बलिदान को करो और मुझ ही को प्रणाम कर, इस तरह मेरे में अपना चित्त स्थिर करके मेरे को ही प्राप्त हवेगा। भगवान कृष्ण के उपदेश से निश्चय हुआ कि जो गतियां यज्ञादि से मिलती हैं वही गतियां भगवान के स्मरण पूजन से मिलती हैं इसलिये भगवान ही का स्मरण पूजन करना श्रेष्ठ है।

यजुर्वेद २६ अ० १८ मन्त्र—एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे। मन्त्रार्थ—(अर्यः) देवेश हे स्वामिन् (मानुषाणां) मनुष्यों के (एना) इन (विश्वानि) सम्पूर्ण (द्युम्नानि) धन

वा यशों को (आ) सब प्रकार प्राप्त कराओ (सिपामन्तः) दान करने की इच्छा वाले हम (वनामहे) उन आप के दिये धनों को सेवन करें अथवा हे स्वामिन् हम (मनुष्याणां) मानवीय (एना विश्वानि धुम्नानि) इन सब धनों को (आ) सब प्रकार (सिपामन्तः) प्रदानपूर्वक एकमात्र तुम्हारे ही भजन में (वनामहे) प्रस्तुत होते हैं तुम्हारी ही तुष्टी के निमित्त यह सब लोक हितकारी अनुष्ठान किया है (ऋ० ७।१।१६।)

इसी मंत्र के द्वारा धन सम्पत्ति त्याग पूर्वक भजन करना उत्तम है। यह जानकर चक्रवर्ती महाराजों ने सतयुग आदि में भी राज्य छोड़-कर वन में जाकर ईश्वर का आराधन किया है। कलियुग में त्याग तो है नहीं इसलिये गृहस्थाश्रम में रह कर भगवान् को भजन करना चाहिये।

वेदों में भी नाम का महत्व सभी युगों में श्रेष्ठ माना गया है। कर्म बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष की वांछा हो तो भगवान् (राम कृष्ण) (ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मा मनुस्म रन् यः प्रयाति त्यजन् देहंस याति परमां गतिम् राम नाम्नः समुत्पन्नः प्रतापो मोक्षदायकः। रूपं तत्वमसेश्चासौ वेदतत्वाधिकारिणः) का स्मरण करना चाहिये।

श्रुति स्मृति आदि तथा पुराणों से निश्चय हुआ कि कलियुग में योग यज्ञ तप आदि का अधिकार नहीं केवल यथा शक्ति दान और ॐ कार सहित भगवान् (राम कृष्ण) का नाम स्मरण करने का अधिकार है, कलियुग में केवल भगवान् का नाम स्मरण करने ही से वे सब गतियां मिलती हैं जो सतयुग में तपादि से त्रेता में ज्ञान यज्ञादि से द्वापर में यज्ञादि से मिलती हैं। जिस युग में जिसके लिये जो धर्म तथा कर्म लिखा है उस युग में उसको वही धर्म तथा कर्म करना

चाहिये। युग के विरुद्ध धर्मों तथा कर्मों को करने से कोई लाभ नहीं होता। युग के विरुद्ध धर्मों तथा कर्मों को करने से लाभ के बदले लोकापवादादि हानियां होती हैं कारण कि सतयुग के धर्म कलियुग में हो नहीं सकते इसीलिये शास्त्रों में माना लिखा है (यस्तु कार्तयुगो धर्मो न कर्तव्यः कलौ युगे। पापयुक्ताश्च सततं कलौ नार्यो नरास्तथा। सतयुग के धर्म कलियुग में नहीं होते कारण कि कलियुग के नर नारी पाप कर्म में रत रहते हैं) मनुष्यों को कलियुग में भगवान् के नाम स्मरण करने से धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। सतयुग में तप करने से त्रेता में ज्ञान से तथा यज्ञों-द्वारा यजन करने से, द्वापर में यज्ञ तथा भगवान् की पूजा से जो गतियां होती हैं, वही गतियां कलियुग में भगवान् के नाम स्मरण करने से होती हैं। सत्य, दया, तप और अभय दान ये धर्म के चार चरण हैं ये चारो चरण असंतोष, हिंसा, मिथ्याभाषण, और द्वेष आदि अधर्म के बढ़ जाने से कलियुग में नष्ट हो जाते हैं (सर्वेनष्टाः कलोयुगे) स्मृति चन्द्रिका में लिखा है कि ४४०० वर्ष कलियुग बीत जाने पर वर्णाश्रमादि धर्म नष्ट हो जाते हैं इसलिये संन्यास योग यज्ञादि नहीं करना चाहिये। यदि हठात अज्ञानतावस किया भी जाय तो शास्त्र विधि से हो नहीं सकता, अशास्त्र विधि से मनमाना करने से कोई लाभ नहीं, जैसा कि गीता में लिखा है—यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परांगतिम्। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणंते कार्याकार्य व्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्मकर्तु मिहार्हति।

जो शास्त्र विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से चलता है, वह

न तो सिद्धि को प्राप्त होता, न परम गति को और न सुखों को ही प्राप्त होता है। इसलिये कर्तव्य अथवा अकर्तव्य (योग्य अथवा अयोग्य) का निर्णय करने के निमित्त तुझको शास्त्र ही का आधार लेना चाहिये। शास्त्रों में कहा हुआ कर्म (काम) समझकर तुझे इसलोक में करना योग्य है। इसी से तुमको सिद्धि होगी और सुखों को भोग कर परम गति को प्राप्त होवोगे। इससे तो सभी युगों में सभी को शास्त्र के अनुकूल ही कर्मों तथा धर्मों को करना चाहिये। कलियुग में योग, यज्ञ, तप बहुत काल तक ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास आदि न होने के कारण शास्त्रों में मना लिखा है, इसलिये शास्त्रों के विरुद्ध कर्मों को नहीं करना चाहिये। कलियुग में शास्त्रों के विरुद्ध यज्ञादि करने से (विधिपूर्वक न होने से) भगवान् को कष्ट और कार्य की हानि होती है। गीता—अशास्त्र विहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः। दंभाहंकार सयुक्ता कामरागबलान्विताः। कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राम मचेतसः। मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विध्यासुर निश्चयान्। जो मनुष्य शास्त्र विधि से रहित (केवल मनोकल्पित) घोर तपको तपते हैं, दंभ और अहंकार से युक्त एवं कामना, आसक्ति और बलके अभिमान से भी युक्त हैं, शरीर रूप से स्थित भूतसमुदाय को (अर्थात् शरीर, मन और इन्द्रियादिकों के रूप में परिणत हुए आकाशादि पांच भूतों को) और अन्तःकरण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को भी कृश करने वाले हैं (शास्त्र से विरुद्ध उपवासादि घोर आचरणों द्वारा शरीर को सुखाना एवं भगवान् के अंशस्वरूप जीवात्माको क्लेश देना, भूतसमुदायको और अन्तर्यामी परमात्मा को कृश करना है)। उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाववाले

ज्ञान। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीता में योग, यज्ञ, तप, आदि सभी उपदेशों को दिये; विराट रूप दिखलाये। ये सब श्रेष्ठ शिक्षाओं को देने पर भी युद्ध करने को कहे, वहाँ कारण बतलाये हैं कि जो तू अहंकार को अवलम्बन करके ऐसा मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा तो यह तेरा निश्चय मिथ्या है क्योंकि प्रकृति (क्षत्रियपन का स्वभाव) तेरे को जबर-दस्ती युद्ध में लगा देगा। हे अर्जुन! जिस कर्म को तू मोह से नहीं करना चाहता है उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मों से बंधा हुआ परवस होकर करेगा। हे अर्जुन शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ हुए संपूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब भूत प्राणियों के हृदय में स्थित है। हे भारत सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को (लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता, ममता से रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भाव से अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेम-पूर्वक निरन्तर भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन करते रहना एवं भगवान् का भजन स्मरण रखते हुए ही उनकी आज्ञा-नुसार कर्तव्य, कर्मों का निःस्वार्थ से केवल परमेश्वर के लिये आचरण करना यह सब प्रकार से परमात्मा के अनन्य शरण होना है) प्राप्त हो उस परमात्मा की कृपा से ही परमशान्ति और सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिये कहा है, इस रहस्य युक्त ज्ञान को संपूर्णता से अच्छी प्रकार विचार के फिर तू जैसा चाहता है वैसे ही कर (अर्थात् जैसी तेरी इच्छा

हो वैसे ही कर)। ये सब भगवान् का उपदेश सुनने के बाद अर्जुन ने कहा—हे अच्युत! आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिये मैं संशय रहित हुआ स्थित हूं और आप की आज्ञा पालन करूँगा; अर्थात् युद्ध करूँगा। श्रीकृष्ण भगवान के आदेशानुसार निश्चय हुआ कि शास्त्र विधि से जिस युगमें जिसके लिये जो कर्म है उन्हीं कर्मों को करने से भगवान को प्रसन्नता और लौकिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति तथा सिद्धि होती है। अशास्त्र विधि से युग तथा वर्णादि धर्मों के विरुद्ध कर्मों को करने से भगवान को कष्ट और लौकिक तथा पारलौकिक सुखों की हानि होती है। रामायण में कागभुसुन्डजी कहते हैं—

> सुनु खगेश कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखंड,
> काम क्रोध लोभादिमद व्यापि रहेउ ब्रह्मण्ड।
> तामस धर्म करहि नर जप तप मख व्रत दान,
> देव न बरषै धरनी पर बये न जामहि धान।

हे गरुड़जी सुनो कलियुग में कपट, हठ, दंभ, द्वेष, पाखंड, काम, क्रोध, लोभ, और अभिमानादि संसार में व्याप्त रहते हैं। मनुष्य तामस धर्म, जप, तप, व्रत, यज्ञ, और दान करते हैं जिससे पृथ्वी पर मेघ नहीं बरसते और बोये हुये धान नहीं उपजते। सतयुग आदि में यज्ञादि करने से सुन्दर वृष्टि होती थी सभी फल सुन्दर होते थे, कलियुग में यज्ञादि तामस धर्म करने से वृष्टि नहीं होती, बोये हुये धान नहीं उपजते। कलियुग में योग, यज्ञादि कलि के विरुद्ध शास्त्र के विरुद्ध धर्मों को नहीं करना चाहिये। कलियुग में केवल भगवान का नाम और गुणों

का स्मरण कीर्तन, गीता भागवतादि श्रवण करना चाहिये ।

युगों का सारांश

सतयुग में धर्म चारों चरण से रहता है । सतयुग के सब लोग धर्म में लीन रह कर तप, योग, यज्ञ, ज्ञान, दान कृच्छ्र, चान्द्रायणादि व्रत (कोई तप, कोई योग, कोई यज्ञ, कोई दान, कोई ज्ञान, कोई व्रत) करते हैं । नियमानुकूल (वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल) धर्मों को करने से भगवान की प्रसन्नता और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है । सतयुग में सभी धर्मों में श्रेष्ठ तप माना जाता है । श्रुति स्मृति शास्त्र पुराणों के अनुकूल जो कर्म किया जाता है उसीका नाम धर्म तथा पुण्य है, और जो कर्म श्रुति स्मृति शास्त्र पुराणों के विरुद्ध किया जाता है उसी का नाम अधर्म तथा पाप है । सतयुग में सभी लोग श्रुति स्मृति शास्त्र पुराणों के अनुकूल कर्मों को करते हैं, धर्मात्मा कहे जाते हैं और सुख के भागी होते हैं । धर्म का फल सुख और अधर्म का फल दुःख होता है ।

त्रेता में तीन चरणों से धर्म रहता है । त्रेता के लोग शास्त्रों के अनुकूल धर्मों को करते हैं, विशेष लोग धर्मात्मा होते हैं । चार आना अधर्म भी रहता है । कुछ लोग पाप बुद्धि होने के कारण कष्ट के भागी भी होते हैं । ज्ञान, यज्ञ, दानों के द्वारा भगवान के पूजन करके उद्धार होते हैं । सभी धर्मों में ज्ञान तथा यज्ञ प्रधान माना जाता है । युगका धर्म तभी तक प्रबल रूप से रहता है जबतक युगके अनुकूल अवतार नहीं होता, युग के अनुकूल भगवान के आ जाने पर सभी श्रुति स्मृति शास्त्र पुराण भगवान में लिप्त हो जाते हैं भगवान का

वाक्य ही श्रुति स्मृति हो जाता है। धर्म चारों चरण से वर्तमान होकर सभी धर्म सतयुग के होने लगते हैं। सभी लोग भगवान की आज्ञा के अनुकूल चलने लगते हैं और धर्म, अर्थ, काम-मोक्ष के भागी होते हैं। त्रेता में रामावतार होने पर सतयुग के कृत्य होने से तुलसी दास जी ने लिखा है—त्रेता भई सतयुग की करणी।

द्वापर में आधा धर्म आधा अधर्म, आधा पुण्य आधा पाप रहता है (पुण्य पाप बराबर २ रहता है)। पुण्य पाप बराबर रहने से आधे लोग पुण्यात्मा आधे पापात्मा होते हैं अथवा आधा पुण्य आधा पाप करते हैं। यज्ञ, दान, भगवान की पूजा करके उद्धार होते हैं। द्वापर में सभी धर्मों में यज्ञ और भगवान की पूजा प्रधान मानी जाती है! पहले लिख चुके हैं कि युग का धर्म अवतार होने के पहले प्रवलरूप से होता है। अवतार हो जाने के बाद जब भगवान दुष्टों को विनाश कर धर्म की स्थापन करते हैं तब सतयुग के कृत्य होने लगते हैं। द्वापर में कृष्णावतार होने पर भगवान श्री कृष्ण के आज्ञा के अनुकूल सब लोग चलने लगे। सभी पापात्माओं (दुष्टात्माओं) को भगवान कृष्ण ने उद्धार किया और गीता में उपदेश किया कि जो कुछ हैं सो हम हैं। हमही को स्मरण पूजन करने से परमपद का प्राप्त होवोगे। ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मा मनुस्मरन्। यः प्रयातिस मद्भावं जाति नास्त्यत्र संशयः।

कलियुग में तीन हिस्सा पाप (अधर्म) एक हिस्सा पुण्य (धर्म) रह जाता है, सोभी पांच हजार वर्ष कलियुग बीत जाने पर नष्ट (लोप) हो जाता है (सर्वे नष्टाः कलौ युगे)। सभी लोग श्रुति स्मृति शास्त्र पुराण

के विरुद्ध मनमाना चलने लगते हैं। अधर्म को ही धर्म मान कर प्रसन्न रहते हैं, बुद्धि नष्ट भ्रष्ट हो जाती है, सभी को ब्रह्मज्ञान सुझने लगती है, सभी कर्म कलियुग के होने लगते हैं। कलियुग के कृत्यों को देख कर गंगा जी ग्रामदेव विष्णु भगवान् धीरे २ भागने लगते हैं। सत्य का पराजय असत्य से, धर्म का पराजय अधर्म से हो जाता है। धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि हो जाने से और विष्णु-भगवान् के चले जाने से सब लोग अन्न वस्त्रादि के बिना दुःखी होकर नष्ट भ्रष्ट मार्ग से जीवन निर्वाह करने लगते हैं, पाखण्डि सब धर्म के नाम पर भरण पोषण करते, और धर्म की रक्षा करने के लिये दौड़े चलते हैं। धर्म के बहाने नाम और द्रव्योपार्जन करते हैं इत्यादि। कलियुग का जो धर्म है सो सब पर व्याप्त रहता है। युग २ में धर्म संकट आया करता है, पहले भी अनेकों बार आ चुका है। जब २ धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है या हुई है तब २ विष्णु भगवान् अवतार धारण कर धर्मादि की रक्षा करते हैं या किये हैं। भगवान के बिना पण्डित जी या महात्मा जी या कोई भी यज्ञादि से रक्षा नहीं कर सकते, यदि ऐसा होने को होता तो त्रेता द्वापर में एक से एक बड़े बड़े विद्वान् महात्मा थे वे सब भी यज्ञादि करा कर रक्षा करते। रामायण पढ़िये—रामावतार होने के पहले अधर्म से व्याकुल होकर पृथ्वी गौ के रूप धारण कर देवताओं के पास गई, सारा दुःख सुनाई, देवता सब कुछ नहीं कर सके तब सब मिल कर ब्रह्मा जी के पास गये और पृथ्वी भी गई, ब्रह्मा जी पृथ्वी के दुःखों को सुन कर कहने लगे कि इसमें मेरा कुछ बस नहीं किन्तु जिसकी तू दासी है

वही अविनाशी मेरा और तेरा सहायक है।

ब्रह्मा ने भगवान के चरणों का स्मरण कर कहा, हे पृथ्वी मन में धीरज धरो, भगवान भक्तों के दुःखों को जानते हैं। वही कठिन विपत्ति का नाश करेंगे। ब्रह्मा की बात सुन सम्पूर्ण देवता बैठकर विचार करने लगे कि भगवान को कहां पावें और कहां पुकार करें। किसी ने वैकुण्ठ लोक में जाने को कहा, किसी ने समुद्र में रहते हैं कहा। जिनकी जैसी भावना थी अपने अपने मत के अनुकूल सबों ने कहा। वहां पर शंकर जी भी थे, शंकर जी कहने लगे कि मैं जानता हूँ भगवान सब जगह हैं (जले विष्णुः स्थले विष्णु विष्णुः पर्वत मस्तके। ज्वालमालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्) प्रेम से प्रगट होते हैं। शंकर जी की बात सुन कर सब को प्रसन्नता हुई। ब्रह्मा जी साधु साधु (बहुत अच्छा २) कहने लगे और प्रसन्न चित्त से हाथ जोड़ कर भगवान की स्तुति करने लगे। ब्रह्मा जी की स्तुति सुन कर पृथ्वी और देवताओं को दुःखी जान कर प्रीति सहित बचनों से दुःख और सन्देह की नाश करने वाली गम्भीर आकाशवाणी हुई। हे मुनि सिद्ध और देवताओं के स्वामी तुम मत डरो, मैं तुम्हारे ही लिये मनुष्य की देह धारण करूंगा (अवतार लूँगा)। मैं सब पृथ्वी का भार हरूँगा। आकाशवाणी सुन कर ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को समझाया। तब वह निडर हुई और जी मे भरोसा हुआ। ब्रह्मा जी देवताओं को तबतक कपी शरीर धारण कर भगवान के चरणों के सेवन करने को उपदेश देकर अपने लोक को चले गये। कुछ दिनों के बाद अवसर आने पर (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, लग्न, ग्रह आने पर) भगवान रामचन्द्र ने भाइयों के सहित अवतार धारण कर दुष्टों को विनाश

कर भक्तजनों की रक्षा की और पृथ्वी को अधर्मरूपी भारों से मुक्त किये। इससे प्रगट होता है कि युग युग के अनुकूल जो २ अनीतियां होती हैं उसे रोकने की शक्ति सिवाय भगवान के ब्रह्मा जी को भी नहीं है। यदि ब्रह्मा को शक्ति होती तो 'इसमें मेरा कुछ बस नहीं' नहीं कहते वे तो शीघ्र ही उपाय कर देते। जब ब्रह्मादि देवों की शक्ति नहीं तब कलियुग के मनुष्यों में शक्ति कहां से आवेगी कि कलियुग के अत्याचारों को रोक सकेंगे। तब तो धर्म के नाम पर केवल नाम यश द्रव्य प्राप्त कर सकते हैं। दूसरों को बुरा कहना अपने भला बनना ये सब तो कलियुग का धर्म है। इसमें पण्डितों महात्माओं तथा मनुष्यों का कोई दोष नहीं। उनकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ये तो कलियुग का धर्म है और कलियुग के कृत्य सब अवश्य होंगे। श्रुति स्मृति तो युग के अनुकूल रहने तथा चलने को कहती है और जिससे जनता तथा देश की भलाई हो वही करने को कहती है। लोभ तथा अविद्या के कारण धर्म के नाम पर द्वेष फैलाना निन्दा करना किसी को नीच कहना ये सब तो सदाचार तथा धर्म के विरुद्ध है, सनातन धर्म तो सबों से प्रेम करने को, सभी धर्मों को श्रेष्ठ मानने को, सभी की प्रसंशा करने को कहती है, यहां तक कि अत्यंजों तथा यवनों को भी श्रेष्ठ मानने को कहती है क्योंकि सबों को भगवान ही उत्पन्न किये हैं और सब में हैं। गीता में भगवान कृष्ण का उपदेश है कि श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनंश्रेयः परधर्मोभयावहः)। अपना धर्म गुण से रहित भी हो तो वह दूसरे के उत्तम धर्म से अच्छा है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने

वाला है। इसलिये किसी को या किसी धर्म को नीच तथा खराब कहना एकदम अविद्या (मूर्खता) है। महात्माओं के लिये तो सृष्टि मात्रा श्रेष्ठ है क्योंकि वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः—सबों में ईश्वर को ही देखना महात्मा का लक्षण है, और भेद बुद्धि का नाम ही अविद्या (मूर्खता) है।

कलियुग में संघ में (एकता में) शक्ति है (संघे शक्तिः कलौ युगे) और शूद्र ही प्रधान हैं सब प्राणियों के उनकार के लिये राष्ट्र को सबल और समृद्धशाली बनाने जलाशय बनवाने, वृक्ष लगाने, अधिक अन्न उपजाने के लिये और अन्यायों का बदला न्याय से, शत्रुता का मित्रता से, वैर का बदला प्रेम से देने के लिये प्रयत्न करना चाहिये और बुराई करने वालों को दबाने, दंड देने के लिये संघट व मिलाप कर गांव-गांव में सभा कर परस्पर प्रेम उत्पन्न करनी चाहिये। धर्म की स्थापना के लिये सत्य और अहिंसा का प्रचार करना चाहिये। भगवान की कथा बैठानी चाहिये। वेदों का, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों का पारायण (पाठ करनी करानी सुननी सुनानी) चाहिये। पाठशाला (विद्यालय) खोलनी चाहिये। पर्व २ पर मिलकर महोत्सव मनाना चाहिये। सब भाइयों को मिलकर अनाथों की, पतितों की, मन्दिरों की, धर्मस्थानों की, लोकमाता गौ की रक्षा करनी चाहिये और इन सब कामों के लिये दान देना चाहिये। बालकों को सदाचारी बनाना चाहिये और बालकों में ऐसी ऐसी भावनायें भरनी चाहिये जिससे वे बचपन से ही देश, जाति और धर्म की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझें। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह और

कन्या विक्रय या वर विक्रय जैसी घातक दुष्ट प्रथाओं का वहिष्कार करना चाहिये। स्त्रियों का सन्मान, दुःखियों पर दया करनी चाहिये। उन जीवों को नहीं मारना चाहिये जो किसी पर चोट नहीं करते। मारना उनको चाहिये जो आततायी हों अर्थात् जो स्त्रियों पर या किसी दूसरों के धन वा प्राण पर आक्रमण करते हों और किसी के घर में आग लगाते हों। ऐसे लोगों को जिन्हें मारे विना यदि अपना या दूसरों के प्राण या धन न बच सके मारना धर्म है। स्त्रियों और पुरुषों को निर्भय (निडर), सचाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य से रहना (स्त्री पति से और पुरुष पत्नी से प्रेम करे) धीरज और क्षमा को अमृत के समान सेवन करना चाहिये। अनायास का धन और इन्द्रिय विषय दो सुमार्ग के रोड़े हैं इनसे सदा बचना चाहिये। इस बात को कभी नहीं भुलना चाहिये कि भले कर्मों का फल भला और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है और कर्मों के अनुसार ही प्राणी को बार बार जन्म लेना पड़ता है या मोक्ष मिलता है। घट घट में बसने वाले विष्णु-सर्वव्यापि ईश्वर का स्मरण सदा करना चाहिये, जिसके समान हित दूसरा कोई नहीं, जो एक ही अद्वितीय हैं और जो दुःख और पाप के हरने वाले शिव स्वरूप (कल्याण स्वरूप) हैं, जो सब पवित्र वस्तुओं से अधिक पवित्र जो सब मङ्गल कर्मों के मंगल स्वरूप हैं, जो सब देवताओं के देवता हैं और जो समस्त संसार के एक अविनाशी पिता हैं। सब धर्मों से उत्तम इसी धर्म को सनातन धर्म कहते हैं। सब प्राणियों का हित चाहते हुए धर्म की रक्षा और सभी भेद-भावों को मिटाते हुए देश की सेवा और भगवान का भजन करना चाहिये।

कलियुग के अन्त में (८२१ वर्ष शेष रहने पर) सम्भल ग्राम-निवासी श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुयशा के घर सम्पूर्ण संसार के रचयिता चराचरगुरु आदि मध्यान्त शून्य ब्रह्ममय आत्मस्वरूप भगवान वासुदेव अपने अंश से अष्टैश्वर्ययुक्त कल्किरूप में संसार में अवतार लेकर असीम शक्ति और माहात्म्य से सम्पन्न हो सकल म्लेच्छ दस्यु दुष्टाचारी तथा दुष्ट चित्तों का क्षय करेंगे और समस्त प्रजा को अपने अपने धर्म में नियुक्त करेंगे। इसके पश्चात् समस्त कलियुग के समाप्त हो जाने पर रात्रि के अन्त में जागे हुए के समान तत्कालीन लोगों की बुद्धि स्वच्छ होकर सतयुग के ही धर्मों का अनुसरण करने वाली होगी।
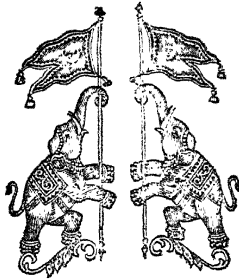
युगधर्म-तृतीय भाग

द्विजातियों का आवश्यक कर्म ।

द्विजातियों को सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये । जो द्विजाती सन्ध्या नहीं करते जीते में शूद्रवत सब कर्मों के अयोग्य और मरने पर कुत्ते के योनि में जन्म लेते हैं । ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य को द्विजाती कहते हैं । व्यासस्मृति—सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रोमृतः श्वा चैव जायते । तस्मिन्नित्यं प्रकर्तव्यं सन्ध्योपासननुत्तमम् । तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्नहि । लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डु कवकानि च । अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्य प्रभवानि च । द्विजातियों को लहसुन, प्याज, अभक्ष्यपदार्थ, तथा अशुद्ध जगह में उत्पन्न शाकादि भी नहीं खाना चाहिये ।

पञ्चयज्ञ ।

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्त थैव च । ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पंच यज्ञाः प्रकीर्तिताः । होमो दैवो वलिर्भौतिः पित्र्यः पिंडक्रिया स्मृतः । स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् । शंखस्मृतिः । अ० ५ श्लो ३।४।

शंखस्मृति में लिखा है कि देवयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और मनुष्य-यज्ञ इन पांच प्रकार के यज्ञों को पंचयज्ञ कहते हैं । हवन को देवयज्ञ, वलि वैश्वदेव को भूतयज्ञ, पिंडदान को पितृयज्ञ, वेदपाठको ब्रह्मयज्ञ और अतिथि पूजन को मनुष्ययज्ञ कहते हैं ।

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः। गृहस्थस्य प्रसादेन जीवंत्येते यथा विधि। गृहस्थ एव यजते गृहस्थ स्तपते तपः। ददाति च गृहस्थस्य तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी। शंखस्मृति। अ० ५ श्लो ५।६। स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः। निर्वपेत्पं-चयज्ञांश्च क्रतुदीक्षां च कारयेत्। पाराशरस्मृति। अ० २ श्लो ६। गयाशिरसि यत्किंचिन्नाम्नो पिंडस्तु निर्वपेत्। नरकस्थो दिवंयाति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात्। आत्मानो वा परस्यापि गयाक्षेत्रे यतस्ततः। यन्नाम्ना पातयेत्पिंडं तं नये द्ब्रह्म शास्वतम्। लिखितस्मृतिः। अ० १ श्लो १२।१३। फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् गयाशीर्षं पदाक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्यया। अत्रि अ० १ श्लो ५७। दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता। गुणायस्य भवंत्येते गृहस्थो मुख्य एवसः। दक्षस्मृतिः। अ० २ श्लो ५५।

शंखस्मृति में लिखा है कि वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, यती ये तीनों तथा द्विज गृहस्थ के प्रसाद से यथा विधि जीवन निर्वाह करते हैं। गृहस्थ ही यज्ञ करता है, गृहस्थ ही तपस्या करता है, गृहस्थ ही दान देता है, इस कारण गृहस्थाश्रम ही सबसे श्रेष्ठ है। पाराशर स्मृति में लिखा है कि जो धान्य अपने जोते हुए खेत में उत्पन्न हो या जिन्हें अपने परिश्रम से संचय किया हो उन धान्यों से पंचयज्ञों को करे। पंचयज्ञ से भिन्न यज्ञ तो कलियुग में मना ही है। गृहस्थों को पंचयज्ञ और गयाश्राद्ध अवश्य करना चाहिये। लिखित स्मृति में लिखा है कि जो मनुष्य गया में जाकर नामोल्लेख करके (जिसका नाम लेके) गया

शिर पर पिंडदान करता है यदि वह प्राणी नरक में हो तो भी स्वर्ग में जाता है और स्वर्ग में हो तो उसकी मुक्ति हो जाती है। अपने सम्बन्धि या दूसरे के सम्बन्धि हो जिसका भी नाम लेकर गया में, पिंड देता है वह प्राणी ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। फल्गु नदी में स्नान करके गया गदाधार के दर्शन से ब्रह्महत्या के पाप से भी छुट जाता है। दक्षस्मृति में लिखा है कि दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, प्रज्ञा, त्याग, कृतज्ञता इतने गुण जिसमें विद्यमान हो वही यथार्थ गृहस्थ है।

गृहस्थों को नव अमृत, नव इषद्दान, नव कर्म, नव विकर्म, नव गुप्त, नव प्रकाश के योग्य, नव सफल, नव निष्फल, नव वस्तु सर्वदा अदेय है। यही नव वस्तु गृहस्थों की उन्नति का कारण है। नव अमृत—यदि सज्जन पुरुष अपने घर पर आवें तो मन, नेत्र, मुख, वाणी, इन चारों को सौम्य रखे, इसके पीछे देखते ही उठ खड़ा हो, आने का कारण पूछे, प्रीति सहित वार्तालाप करे, सेवा करे, चलते समय पीछे २ कुछ दूर चले इस भाँति नौओं को प्रतिदिन करे। नव इषत दान—भूमि, जल, तृण, पैरधोना, उबटन, आश्रय, शय्या, अपनी शक्ति के अनुसार भोजन, घर में निवास और मिट्टी वा जल दे, यह नव इषद्दान घर में सर्वदा होते हैं इससे आगत की सेवा करे। नव कर्म—सन्ध्या, स्नान, जप, होम, वेदपाठ, देवता का पूजन, बलिवैश्वदेव, अपनी शक्ति के अनुकूल अन्न देकर अतिथि सत्कार, पितर, देवता, मनुष्य, दीन, अनाथ, तपस्वी, गुरु, माता, पिता, इन सबका यथा रीति से विभाग यह कर्म है इनको नित्य करे। नव विकर्म—झूठ, पराई स्त्री, अभक्ष्यका भक्षण, अगम्य स्त्री में गमन,

पीने के अयोग्य वस्तु का पान, चोरी, हिंसा, वेदरहित कर्मों का करना, मैत्र कर्म से बाह्य रहना, यह नव कर्म निंदित हैं इन सब को त्याग दे। चुगली, झूठ, माया, काम, क्रोध, अप्रिय, द्वेष, दंभ, द्रोह, ये भी नव विकर्म ही हैं इन सबों को भी त्याग दे। नव गुन—अवस्था, धन, घर का छिद्र, मन्त्र, मैथुन, भेषज, तप, दान, अपमान यह नव सर्वदा छिपाने योग्य है। प्रकाश—उत्तमर्ण ने अधमर्ण को ऋण देना, ऋण की शुद्धि (वापीस दे देना) दान, पढ़ना, बेचना, कन्यादान, वृषोत्सर्ग, एकान्त में—किया हुआ पाप और अनिन्दा ये नवों को प्रकाशित करे। सफल—माता, पिता, गुरु, मित्र, नम्र. उपकारी, दीन, अनाथ, सज्जन, इनको देना सफल है। निष्फल—धूर्त, वन्दी, मल्ल, कुवैद्य, कपटी, शठ, चाटु, चारण, चोर, इनको देना निष्फल है। अदेय-इकट्ठी भिक्षा देना, न्यास, कोश, स्त्री, स्त्रियों का धन, अन्वाहित, निक्षेप प्रियवस्तु और वंश के होते सर्वस्व देना, ये नव वस्तुएं आपत्तिकाल आ जाने पर भी देनी उचित नहीं। उन्हें देनेवाला मूर्ख है और प्राय-श्चित्त करने के योग्य है। इन पूर्वोक्त नवनवक इक्यासी को जो मनुष्य जानता है और नियम पूर्वक करता है वह मनुष्यों का अधिपति है। उसको नीति इस लोक और परलोक में नहीं छोड़ती। गृहस्थ दक्षस्मृति के अनुकूल उपरोक्त ८१ बातों को अवश्य स्मरण रखे।

यः षट्सपत्नानि विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम्। अत्येति दुर्गाश्रित उर्जितारीन्क्षीणेषु कामंविचरेद्विपश्चित्। श्रीमद्भागवत। स्कन्ध ५ अ १ श्लो १८।

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि जो मनुष्य इन्द्रिय रूप शत्रुओं को

जीतना चाहे वह प्रथम गृहस्थाश्रम में रहकर उनको (इन्द्रियों को) जीतने के लिये यत्न करे (विवाह करे) और जब ये इन्द्रिय रूप शत्रु क्षीण हो जांये तब वह विद्वान चाहे घर में रहे चाहे अन्यत्र विचरे क्योंकि जो किले में रहता है वह महाबली शत्रुओं को भी जीत सकता है, वह शत्रु अपने आधीन हो जाय तब चाहे किले में रहे चाहे दूसरे स्थान में रहे। उपरोक्त ब्रह्मा के वाक्य सुन कर राजा प्रियव्रत विज्ञानी होते हुए भी गृहस्थाश्रम में रहे। ऐसे ही सभी को पहले गृहस्थाश्रममें रहकर इन्द्रियां को जित कर तब फिर जैसो रूची हो करे। महर्षि सब भी विवाह करके इन्द्रियों को बस में करके पीछे धीरे धीरे त्याग करते थे। कलियुग मे तो विशेषदिन ब्रह्मचर्य रहने को भी मना है (दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं) इसलिये अवश्य ही विवाह करके स्त्री पुरुष साथ रह के भगवान के भजन करना चाहिये, जो विवाह न करके बचपन में त्यागी बना लिये जाते या अपने मन से हो जाते हैं वह शास्त्र के विरुद्ध होने के कारण कष्ट के भागी होते हैं और उनको लोकापवाद भी सहना पड़ता है। जिसके लिये (मोक्ष के लिये) गृह त्याग किये उसको (मोक्ष की) सिद्धि भी नहीं होती, क्योंकि वासनायें सब बनी रहतीं हैं, वासना के अनुकूल गृहस्थाश्रम के कर्मों को करने लगते हैं। जैसे मकान, मन्दिर, मठादि बनवाना, मन्दिरों मठों को किराये पर देना, राजाओं सेठों धनाढ्यों को शिष्य बनाकर धनोपार्जन करना, गाड़ी, मोटर आदि सवारी पर चलना, वस्त्र, भोजनादि में लिप्त रहना इत्यादि त्याग के विरुद्ध कर्मों को करने से लोक-परलोक तथा मोक्षमार्ग में बाधा होती है, इससे सुन्दर है कि पहले

गृहस्थाश्रम में रह कर सभी वासनावों से निवृत्त होकर तब त्याग मार्ग (संन्यास) में पादार्पण करें।

भार्या (स्त्री) गृहस्थाश्रम के मूल हैं

पत्नी मूलं गृहं पुंसां यदिच्छंदानुवर्तिनी। गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वशानुगा। तया धर्मार्थकामानां त्रिवर्ग फल मश्नुते। दक्ष-स्मृति। अ० ४ श्लो० १।२। जीवद्भर्तरि वामांगी मृतेवापि सुदक्षिणे। श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा।

दक्षस्मृति में लिखा है कि पुरुषों को स्त्री ही गृहस्थाश्रम का मूल है, यदि स्त्री आज्ञाकारिणी हो तो गृहस्थाश्रम से परे और कोई श्रेष्ठ सुख का साधन नहीं है। यदि स्त्री वसवर्तिनी हो तो पुरुष स्त्री के साथ धर्म अर्थ काम इन तीनों वर्गों को फलों को भोगता है। अत्रिस्मृति में लिखा है कि स्त्री सदा वामांगी है और पुरुष दाहिनी ओर का भागी है, परन्तु श्राद्ध, यज्ञ, और विवाह के समय स्त्री दाहिनी ओर की भागी है इसलिये दाहिनी ओर बैठे। पुरुष स्त्री के रहते स्त्री के बिना धार्मिक कर्मों को करने से आधे फलों के भागी होते हैं और स्त्री के साथ रहकर करने से सम्पूर्ण फलों के भागी होते हैं, इसीलिये स्त्री पुरुष दोनों साथ रहकर धार्मिक कर्मों को करें।

चारो वर्णों का कर्म

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः।
प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः॥
क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः।
शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः॥

दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ।
शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ।
क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ।
देव यात्रा विवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥
प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥
विप्रा मन्त्रा कुशा बह्निः तुलसी च खगेश्वरः ।
नैते निर्माल्यतां जान्ति योज्यमाना पुनः पुनः ॥
कुशा पिंडेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने ।
मन्त्रा शूद्रेषु निर्माल्या चितायां च हुताशनः ॥

अत्रिस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मणों के छैः कर्म हैं, उनमें यजन, दान और अध्ययन यह तीन तपस्या है और दान लेना, पढ़ाना, यज्ञ कराना, यह तीन जीविका है। क्षत्रियों के पांच कर्म है, उनमें यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या है और शस्त्र का व्यवहार, प्राणियों की रक्षा करना यह दो जीविका है। वैश्यों की यजन, दान, अध्ययन, यह तीन तपस्या है, खेती, वाणिज्य, गौओं की रक्षा और व्यवहार यह चार जीविका है। शूद्रों की ब्राह्मण आदि की सेवा करना यही तपस्या है और शिल्प कार्य उनकी जीविका है। शंखस्मृति में लिखा है कि विशेष करके क्षमा, सत्य, दम और शौच ये चारो वर्णों के समान कर्म हैं। अत्रिस्मृति में लिखा है कि देवयात्रा में (देवताओं के दर्शन के निमित्त जाने में) विवाह में, यज्ञ आदि प्रकरण में और

सम्पूर्ण उत्सवों में स्पर्शास्पर्श (छुआछूत) का विचार नहीं होता। मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मण के निन्दित अध्यापन याजन और दान इनमें से दान लेना बहुत ही निकृष्ट है क्योंकि यह परलोक में नरक का कारण है, इसलिये अध्यापन और यज्ञ कराने से जीविका न हो तब दान लें। गरुड़ पुराण में लिखा है कि ब्राह्मण, मन्त्र, कुशा, अग्नि, तुलसी और गंगा जी कभी निर्माल्य (अशुद्ध) नहीं होते इनको बारंबार योजना करना चाहिये। किन्तु कुशा पिंड में, ब्राह्मण प्रेत के अन्न (श्राद्ध में) भोजन करने से, मन्त्र शूद्रों के पढ़ाने से, अग्नि चिता के कामों में लाने से अशुद्ध हो जाते हैं। इनको दूसरे कामों में नहीं लेना चाहिये। ब्राह्मणों के लिये दान और श्राद्ध का अन्न दूषित है, दान और श्राद्ध के अन्न से ब्राह्मणों को सदा बचना चाहिये। जब कोई जीविका न हो तब दान ले, श्राद्ध में भोजन करें और गायत्री मन्त्र का जप करें।

स्त्रियों का धर्म

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन वा। नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पति पूजनम्। नास्तिस्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्। पतिं शुश्रूषते येन तेन सर्वे महीयते। योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा। तद्धिताशुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतोद्विजाः। जपस्तप-स्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मन्त्र साधनम्। देवाराधनं चैव स्त्रीणां पतनानिषट्। अनुकूला त्ववाग्दुष्टा दक्षा साध्वी प्रियंवदा। आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी। दारिद्रं व्याधितं चैव भर्तारंयावमन्यते। शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः। न स्त्रिया वपन कार्यं न च वीरासनं

स्मृतम् । शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला । दैवे कर्मणि-पित्र्ये च पंचमेऽहनिशुद्ध्यति । मृतेभर्तरि या नारी ब्रह्मचर्य व्रतेस्थिता । सा मृतालभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ।

शंखस्मृति में लिखा है कि स्त्रियों का सब से पवित्र धर्म पति की पूजा है । व्रत उपवास और अनेक भांति के धर्म करने से स्त्री को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती परन्तु केवल एकमात्र पति के पूजन से स्वर्ग को जाती है । मनु जी कहते हैं कि स्त्रियों को पति के बिना अलग यज्ञ, व्रत और उपवास करने का अधिकार नहीं है, स्त्री तो केवल पति की सेवा से ही स्वर्ग में आदर पाती है । विष्णु पुराण में लिखा है कि स्त्रियाँ तन मन बचन से पति की सेवा करने से स्वर्ग में जाती हैं । अत्रिस्मृति में लिखा है कि स्त्रियों को पति के बिना जप, तपस्या, तीर्थ-यात्रा, संन्यास, मंत्रसाधन, देवताओं की आराधना ये छै कर्म पतित करने वाले हैं अर्थात् ये छै कर्मों को करने से स्त्रियां पतित हो जाती हैं, इसलिये पति के साथ रह कर इन सभी कर्मों को करना चाहिये । दक्षस्मृति में लिखा है कि जो स्त्री स्वामि के (पति के) अनुकूल आचरण करती है, वाक्यदोष रहित (विनय युक्त भाषण करनेवाली) कार्य में कुशल सती मिठी बोलने वाली और जो स्वयंही धर्म की रक्षा करती है और पति के भक्ति करनेवाली है, वह स्त्री मानुषी नहीं वरन् (ओतो) देवता के समान है और जो स्त्री दरिद्र वा रोगी पति को तिरस्कार करती है वह स्त्री कुतिया, गीधनी, मकरी की योनि में बारम्बार जन्म लेती है, इसलिये पति दरिद्र वा रोगी हो तो भी उसे तिरस्कार करना नहीं चाहिये । यमस्मृति में लिखा है कि स्त्रियों को बाल नहीं

कटवानी चाहिये और वीरासन से नहीं बैठनी चाहिये। शंखस्मृति में लिखा है कि रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करके स्वामि (पति) के निमित्त और देवता तथा पितरों के कर्म में पांचवें दिन शुद्ध होती है। स्त्री के स्वामी पतिदेव हैं। स्त्रियों के लिये पति के सिवाय दूसरा कोई स्वामी या देव या धर्म नहीं है। तुलसी दास जी लिखे हैं—नारी धर्म पतिदेव न दूजा। स्त्रियों के धर्म पतिदेव हैं और दूसरा कोई नहीं। स्त्रियों को पति का दिया हुआ सिन्दुर ही ललाट में लगानी चाहिये। चन्दन कंठ में लगा सकतीं हैं ललाट में नहीं। पाराशरस्मृति में लिखा है कि पति के मृत्यु होने पर जो स्त्री ब्रह्मचर्य नियम से स्थित रहती है वह मरने के उपरान्त ब्रह्मचारी के समान स्वर्ग में जाती है इसलिये पतिदेव के शरीर त्यागने पर शुद्धाचरण से (ब्रह्मचर्य से) रहकर पतिदेव के चरणों में ही मन लगाने से उन्हीं के स्मरण पूजन करने से स्वर्ग में सदा आदर पाती हैं।

धर्म का लक्षण

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौच मिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

संतोष, क्षमा, मनको वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध (किसी पर क्रोध न करना) ये धर्म के दश लक्षण है।

वानप्रस्थ और संन्यास धर्म।

चतुर्थ मायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः।
द्वितीय मायुषो भागं कृतदारं गृहे वसेत्॥
वनेषु च विहृत्यैवं तृतीय भाग मायुषः।

चतुर्थ मायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परि व्रजेत् ॥
वाग्दंडोथ मनोदराडः कायदराडस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता वुद्धौ त्रिदराडीति स उच्यते ॥
काष्ठदराडो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ।
स याति नरकान्घोरान् महारौरव संज्ञितान् ॥
चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचक वहुदकौ ।
हंसः परम हंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥
अन्नार्थं लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थ मितिस्थितिः ।
त्रिदंड लिंग माश्रित्य जीवेति वहवो द्विजाः ॥
न तेषा मपवर्गोस्ति लिंगमात्रोप जीविनाम् ।
त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषया निन्द्रियाणि च ॥
आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ।

मनुस्मृति में लिखा है कि द्विज पहले अवस्था में (ब्रह्मचर्यावस्था में) गुरु के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन करे और दूसरे भाग में विवाह करके गृहस्थाश्रम में निवास करे। आयु के तीसरे भाग में वन में विहार करके आयु के चतुर्थ भाग में विषयों से मन को त्याग कर संन्यास आश्रम का ग्रहण करे। मनुजी कहते हैं कि संन्यास ज्ञान तथा त्याग से होता है, दंड धारण करने से नहीं होता। जिसके वुद्धि में मानसिक, वाचिक और शारीरिक दंड स्थित है अर्थात् जो मन वचन और शरीरके वश में रखता है वही त्रिदंडी है केवल दंडग्रहण करने से दंडी नहीं होता। यमस्मृतिमें लिखा है कि जिसने काष्ठ के दंड को धारण किया और जहां तहां भोजन किया, ज्ञानसे हीन रहा वह महारौरव

नरकों में गमन करता है। विष्णु स्मृति में लिखा है कि संन्यासी चार प्रकार के होते हैं, कुटीचक, बहुदक, हंस और परम हंस। इनमें जो जो पिछला है वही उत्तम है। संन्यास का चिन्ह अन्न के लिये कहा है, मोक्ष के लिये नहीं। संन्यास के चिन्ह धारण कर बहुत से द्विज जीवन करते हैं, उनको मोक्ष नहीं, जो लोक, वेद, विषय, इन्द्रिय को त्याग कर आत्मा में ही स्थित रहते हैं वह परमपद को प्राप्त होते हैं।

वानप्रस्थ और संन्यास का कर्म।

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः॥
उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितृन्देवांश्च तर्पयेत्।
तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद् देह मात्मनः॥
अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थ माश्रयेत्।
उपेक्षकोऽसं कुसुको मुनिर्भाव समाहितः॥
कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता।
समताचैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्॥
दृष्टिपूतां न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन।
नचेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित्॥
क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुद्ध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत्॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।

आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥
अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ।
तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥
अलांबु दारुपात्रं च मृण्मयं वैदलं तथा ।
एतानि यति पात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥
एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥
पादु के चापि गृह्णियात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ।
संभाषणं सह स्त्रीभिरालंभप्रेक्षणे तथा ॥
नृत्यं गानं सभां सेवां परिवादांश्च वर्जयेत् ।
वानप्रस्थ गृहस्थाभ्यां प्रीतिं यत्नेन वर्जयेत् ॥
एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ।
ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥
यतये कांचनंदत्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे ।
चौरेभ्योऽप्यभयं दत्वा ददाति नरकं ब्रजेत् ॥
शुक्लवस्त्रं च यानं च तांबूलं धातूमेव च ।
प्रतिगृह्य कुलं हन्या त्प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥

मनुस्मृति में लिखा है कि वानप्रस्थ अवस्था में धीरे धीरे गृहस्था-श्रम से मन को हटाकर त्याग में लगाना चाहिये, आहार विहार नियम पूर्वक करना चाहिये, अपने तप को बढाता हुआ वानप्रस्थ ग्रीष्मऋतु में पंचाग्नि में तप करे, वर्षाऋतु में वर्षा की जगह नग्न बैठकर तप

करे, और हेमन्त (जाड़ेकी) ऋतु में गीलेवस्त्र धारण करे और कठिन तपस्या करके अपने शरीर को सुखावे ये सब वान प्रस्थ का कर्म है। संन्यास का कर्म—अग्नि रहित, गृहहीन, व्याधि की चिकित्सा से रहित, स्थिर बुद्धि, मौनी, सदा ब्रह्म में एकाग्रचित्त, होकर समय बितावे और केवल भिक्षा (भोजन) के लिये गांव में जाय मिट्टी का सकोरा आदि भिक्षा के पात्र, रहने के लिये वृक्ष की जड़, जीर्ण (कौपीन कंथा आदि) वस्त्र, अकेला निवास, और सब में समान दृष्टि रखना ये मुक्त के लक्षण हैं। मार्ग को देखकर पैर रखे, वस्त्र से छानकर जल पिए, सत्य से पवित्र वचन बोले, पवित्र मन से भगवत् भजन करे। दूसरे के कहे कटु वचन को सहलेवे परन्तु किसी का अपमान न करे और क्षण भंगु शरीर से किसी के साथ शत्रुता न करे दूसरे के क्रोध करने पर उसपर क्रोध न करे, कोई अपनी निन्दा करे तौभी उससे मीठे वचन बोले (त्वचा, नाक, कान, नेत्र, जिह्वा, मन, बुद्धि) इन सातों द्वारों से विषय की मिथ्या बातें न करे अर्थात् ब्रह्म, संबंधी बातों को करे। सदा ब्रह्म का ध्यान करे, योगासन से बैठे, सब विषयों से विरक्त रहै (दंड कमंडल आदि) किसी बात की इच्छा न करे और केवल अकेला ही मोक्ष के सुख का चाहने वाला संन्यासी विचरै अर्थात् सबका संग और ममता को त्याग दे। संन्यासी का भिक्षापात्र धातु का न हो और पात्र में छेद भी न हो, जैसे यज्ञ में चमस शुद्ध होते हैं वैसे ही इन सब पात्रों की शुद्धि जल से कही गई है। तूवां और काठ मिट्टी तथा बांस का पात्र संन्यासी के लिये स्वायंभुव मनुने कहा है, संन्यासी प्राण धारण करने के लिये दिन में एकवार भिक्षा मांगै (भोजन करे)

और विस्तार में न लगै क्यों कि भिक्षा में अधिक मन लगाने से संन्यासी विषय भोगमें पड़ जाता है। विष्णुस्मृतिमें लिखाहै कि संन्यासी खड़ाउ ग्रहण करे और इनसे इतर का संग्रह न करे, स्त्रियों का स्पर्श उनके साथ भाषण तथा स्त्रियों को देखना नाच, गाना, सभा, सेवा (नौकरी) निन्दा इनको छोड़ दे; संन्यासी वानप्रस्थ और गृहस्थका संगभी यत्नसहित त्याग दे। सम्पूर्ण परिग्रह (दान) त्याग कर अकेला भ्रमण करे। अत्रि स्मृति में लिखा है कि ब्रह्मचारी, यति (संन्यासी) विद्यार्थी गुरु को पालनेवाला, पथिक और दरिद्र इनको भिक्षुक कहते हैं। भिक्षुक को नीच दृष्टि सेदेखने तथा अपमान करने से गृहस्थ प्रायश्चित्त के भागी होता है इसलिये भिक्षुकों को आदर की दृष्टि से देखनी चाहिये और आगत भिक्षुकों को भिक्षा देनी चाहिये। पाराशरस्मृति में लिखा है कि जो दाता संन्यासी को सुवर्ण तथा धनादि दान देता है, ब्रह्मचारी को तांबूल (पान) और चोरों को अभय देता है वह नरक को जाता है। जो संन्यासी श्वेतवस्त्र, वाहन, तांबूल (पान) तथा धनादि प्रतिग्रह (दान) लेते हैं, वह जिससे प्रतिग्रह (दान) लेते हैं उसके कुलों का भी नाश करते हैं।

वानप्रस्थ और संन्यास धर्म कठिन होने के कारण कलियुग में मना है (वानप्रस्थाश्रमस्तथा-संन्यासं पलपैत्रकम् इति कलौ निषेधः) संन्यासी को भोजन कराना पुण्य और धनादि दान देना पाप है। संन्यासी को सुवर्णादि दान देना सभी युगों में मना है। त्यागियों को धातु छुना मना है इसीलिये साधु सब लोटा न रख कर तुवा रखते हैं। गृहस्थों को चाहिये कि यति साधु संन्यासियों को धनादि देकर तपमार्ग से भ्रष्ट न करें।

संन्यास आश्रम प्रधान (श्रेष्ठ) माना गया है 'सन्यास शब्द का अर्थ त्याग होता है त्याग होने से श्रेष्ठता होती है, सब कोई साधु कहने लगते हैं साधु का आचरण सदाचार कहाता है, विष्णुपुराण में लिखा है—"साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधु बाचकः। तेषा-माचरणं यत्तु सदाचार स उच्यते"। शत् शब्द का अर्थ साधु है और साधु वही है जो दोष रहित हो उस साधु पुरुष का जो आचरण होता है उसी को सदाचार कहते हैं। सत् तो केवल इश्वर हैं और सब पदार्थ तो दुनिये का असत् है, सभी असत्यों को त्याग कर ईश्वर में परब्रह्म में मन लगाने का नाम साधु संन्यासी यति योगी है। परब्रह्म में मन लगाने से एकाग्र चित्त होने से सुख दुःखादि से रहित होकर ब्रह्मस्वरूप "नरो नारायणो भवेत्" नरनारायण हो जाते हैं और स्वामीजी कहाने लगते हैं। संन्यास ग्रहण चौथा ही अवस्था में हो सकता है या पहला दूसरा अवस्था में भी। संन्यास का नाम ही त्याग है जब त्याग हो जाय तभी संन्यास ग्रहण कर सकता है. ऐसा लिखा है कि ब्रह्मचारी विद्याध्ययन के बाद संन्यास ग्रहण कर सकता है। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद, जड़भरत, सुकदेव, नारदादि हुए हैं। ब्रह्मज्ञान होने के बाद गार्हस्थ कैसे रहेगा या कहावेगा. वह तो(ब्रह्मज्ञानी तो)सबों को ब्रह्म रूप में देखेगा। गीता में श्री कृष्ण भगवान का उपदेश है कि बहुना जन्म नामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः' जो सबमें मेरे ही को देखता है वह सुदुर्लभ महात्मा है। त्याग तथा ब्रह्मज्ञान होने के बाद ही संन्यास ग्रहण करना चाहिये। संन्यासी स्वामीजी कहवाना तो आसान है पर स्वामीजी का कर्म अति कठीन है,

कलियुगमें होना असंभव है, इसीलिये कलियुग में वानप्रस्थ, और संन्यास मना है। स्वामी जी को शिष्य (चेला) भी नहीं बनाना चाहिये क्योंकि ब्रह्मज्ञान होने से त्याग, त्याग होने से स्वामीजी हुये (संन्यास ग्रहण किये) ब्रह्मज्ञान के बाद गार्हस्थों को शिष्य बनाकर (चेला कर) व्यापार करना होगा। चेला बनाना तो पुत्र बनाना और उससे व्यापार करना है। पुत्रादि के सम्बन्ध होने ही से त्याग (संन्यास) भ्रष्ट हो जाता है, त्याग भ्रष्ट होने से पतितों में गणना होती है, इसलिये त्यागी यति को भुलकर भी चेलों के फेरे में नहीं पड़ना चाहिये। साधुओं को साधन करना चाहिये न कि व्यापार। चेला करना भी व्यापार ही है। साधुओं त्यागियों को तो—ध्यानं शौचं तथा भिक्षां नित्य मेकान्त शीलता। भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पंचमं नोप पद्यते। दक्षस्मृति में लिखा है कि ध्यान, शौच, भिक्षा (भोजन) एकान्त में निवास, भिक्षुक (संन्यासी) के ये चार कर्म हैं, पाँचवाँ नहीं। दक्षस्मृति में शिष्य आदि तो तपस्वियों के प्रपंच लिखा है "लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यान शिष्य संग्रहः। एते चान्ये च बहवः प्रपंचस्तु तपस्विनाम्" लाभ पूजादि के निमित्त व्याख्यान देना (ज्ञानोपदेश करना) धन प्राप्ति के निमित्त शिष्यों को संग्रह करना यह सब तथा (ब्रह्म के सिवाय) अन्य सब भी तपस्वियों को प्रपंच है। इसलिए तपस्वियों को चेला आदि के प्रपंचों में नहीं पड़ना चाहिये। गृहस्थों को भी चाहिये कि चेला आदि होकर तथा धनादि देकर त्यागियों को प्रपंचोमें न फसावें क्योंकि पाराशर जी ने त्यागियों को धनादि देने से नर्क होता है ऐसा लिखा है, कारण कि किसी को भ्रष्ट करना भी पाप ही है।

संन्यास और योग में कोई भेद नहीं। संकल्पों के त्याग का नाम संन्यास तथा "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" संकल्पों से चित्तवृत्ति का निरोध (त्याग) का नाम योग है संन्यास और योग दोनों एक ही है भिन्न-भिन्न नहीं। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है—यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव। नह्य संन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन। यदाहि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते। सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते। हे अर्जुन जिसको संन्यास कहते हैं उसी को तू योग जान क्योंकि संकल्पों को न त्यागने वाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता अर्थात् संकल्पों को त्यागने से योगी होता है। जिस काल में न इन्द्रियों के भोग में आसक्त होता है, तथा न कर्मों में ही आसक्त होता है उस काल में सर्वसंकल्पों को त्यागी पुरुष (संन्यासी) योगारूढ कहा जाता है। दक्षस्मृति में लिखा है—प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोथ धारणा तर्कश्चैव समाधिश्च षडंगो योग उच्यते। प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क, समाधि ये छः अंग जिसके हों उसे "योग" कहते हैं।

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः॥
एकाकार मनानंतं बुद्धौ रूपमनामयम्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम्॥
आत्मना वहिरन्तःस्थं शुद्धचामीकर प्रभम्।
रहस्येकांतमासीनो ध्यायेदामरणांतिकम्॥
यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदि स्थितम्।
यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोहमस्मीति चिंतयेत्॥

हारित स्मृति में लिखा है कि प्रथम प्राणायाम से वाणी को प्रत्याहार (विषयों से इन्द्रियों के हटाने) से इन्द्रियों को और धारणा (स्थिरता के कर्म) से वश करने अयोग्य मनको वस में करके एकाग्र चित्त होकर देवताओं को भी अगम्य (प्राप्ति के अयोग्य) और सूक्ष्मसे सूक्ष्म जो जगत् के आश्रय विष्णु भगवान हैं उनका ध्यान करे। जो ब्रह्म अपने स्वरूपसे बाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सुवर्ण के समान जिसकी कांति है ऐसे ब्रह्म का एकान्त में बैठकर मरण समय तक ध्यान करे। जो सम्पूर्ण प्राणियों का हृदय है जो सबके हृदयमें विराजमान है और जो सबके जानने योग्य है वह परमात्मा मैं ही हूँ ऐसा चिन्तवन करे। योगाभ्यास में पहले ब्रह्मचर्य रहकर विद्याध्ययन करके सत्यासत्य का ज्ञान उत्पन्न करे, फिर इन्द्रियों को वसमें करके चित्त को परब्रह्म परमात्मामें एकाग्र करके जीवन पर्यन्त ध्यानमें मग्न रहे अर्थात् लौकिक कर्मों को छोड़कर एकाग्र चित्तसे परब्रह्म परमात्माके ध्यानमें मग्न रहे, यहाँ तक कि परमात्मा मैं ही हूँ ऐसा चिन्तवन करे (जानने लगे कि मैं ही ब्रह्महूँ) संन्यास और योग में ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। कर्म तथा आचार एकही है इसीलिये संन्यास और योग को भगवान कृष्ण ने एक ही कहा है। कलियुगमें ब्रह्मचर्य रहकर स्त्री, पुत्र, मित्र धनादि का त्याग होना ही कठीन है इसीलिये कलियुगमे संन्यास तथा योग मना है। अन्य युगों में भी त्याग के बाद ही संन्यास तथा योग करते थे और उन्हीं को करना उचित भी है क्योंकि गृहस्थाश्रम में रहकर संन्यास तथा योग विडम्बना मात्र ही है। कलियुग में तो मना ही है। तुलसीदासजी—
कलियुग योग यज्ञ नहीं ज्ञानां, एक अधार राम गुण गाना। यहाँ प्रश्न

होता है कि तुलसीदासजी सबों के लिए मना क्यों किये, उनको तो केवल गृहस्थों के लिये मना करना चाहिये था। इसका उत्तर तो सीधा है कि कलियुग मे योगी यति (संन्यासी) और त्यागी तो रह ही नहीं जायेंगे केवल इनका चिह्न (वेष) मात्र रह जायगा, कर्म तो सब गृहस्थों के ही करेंगे, इसी से सबों के लिये मना किये हैं। संन्यास—शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सभी सम्प्रदायों के लिये है। त्याग का नाम संन्यास है चाहे किसी आश्रम के हों। यति (संन्यासी) शब्द से सभी पन्थों के त्यागियों को जानना चाहिये। शैव शाक्त वैष्णव कबीर, शूर, नान्हक आदि सभी पंथों में गृहस्थ और त्यागी दोनों होते हैं। कोई पंथ से कोई पंथ छोटा या बड़ा नहीं है। सभी पंथों में भगवान के भजन करने को लिखा है। और सभी पंथों में भजन के प्रभाव से एक से एक महात्मा हुये हैं। इसलिये सभी पंथों को श्रेष्ट मानना चाहिये और भजन करना चाहिये।

श्री मद्भगवद् गीता का माहात्म्य

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्य कर्मणाम्।

जो मनुष्य श्रद्धा से गीता का श्रवणमात्र करेगा वह भी सभी पापों से मुक्त होकर उत्तम कर्म करने वालों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होगा।

श्रीमद्भागवत का माहात्म्य

प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्री मद्भागवत ध्वनेः।
कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद् वृषा इव।

जैसे सिंह के शब्द से भेंडियें भाग जाते हैं वैसे ही श्री मद्भागवत

की ध्वनि से कलिकाल के सब दोष भाग जाते हैं।

दान का माहात्म्य (दानमेकं कलौयुगे)

संवर्त स्मृति में लिखा है कि नियम पूर्वक दान करने से रोगादि की शान्ति, धनादि तथा सुखादि की वृद्धि होती है और गृह में मंगल कार्य होते हैं। सुवर्ण गौ और पृथ्वी दान करने से सात जन्म तक त्रिलोकों के दान के फलों को पाता है और सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में वास करता है। सप्तधान्य (जव, गेहुम, चावल, मूंग, उरद, चना, कौनी) दान करने से सभी रोगों की शान्ति होती है। मृत्युके समय अष्ट लौह (सप्तधान्य और लोहा, कपास, नीमक, तिल, सोना, गौ, पृथ्वी) दान करने से यम के दूत निकट नहीं आते। सब पदार्थों को इकट्ठा दान करने से कार्यों की सिद्धि, रोगादि की शान्ति और सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में वास करता है। रोगोक्त पदार्थों से तुलादान करने से प्रबल से प्रबल अरिष्टों तथा कठिन से कठिन रोगों की शान्ति होती है और ब्रह्म हत्यादि सभी पापों से मुक्त होकर आरोग्य होता है। जीवन पर्यन्त सुख भोग कर मृत्यु होने पर स्वर्ग में वास करता है। केवल पृथ्वी तथा गौ दान करने से सभी पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में वास करता है। यदि जन्म हो तो राजा होता है। माणिक्य दान करने से सूर्य से उत्पन्न पित्त सम्बन्धि रोगों की, मुक्तादान करने से चन्द्रमा से उत्पन्न क्षयादि, तथा शुक्र से उत्पन्न धातु सम्बन्धि रोगों की, मुंगा दान करने से मंगल से उत्पन्न रक्त सम्बन्धि रोगों की, नीलम दान करने से शनि राहु केतु से उत्पन्न रोगों (ज्वरादि) की, सुवर्ण दान करने से नवग्रहों से उत्पन्न सभी रोगों

की, चांदी दान करने से चन्द्रमा शुक्र से उत्पन्न प्रमेह प्रदरादि रोगों की, कांसा दान करने से बुध से उत्पन्न दद्रु ([illegible]) आदि रोगों की, तांबा दान करने से, सूर्य मंगल से उत्पन्न कुष्ठादि रोगों की, पीतल दान करने से बृहस्पति से उत्पन्न रक्तविकार तथा ज्वरादि रोगों की, लोहा दान करने से शनि राहु केतु से उत्पन्न सभी रोगों की, रांगा दान करने से अर्श (बवासीर) आदि रोगों की, सीसा दान करने से मृगी, अन्न दान करने से सभी ग्रहों तथा सभी रोगों की, दुग्ध दान करने से पित्त रोग, दही दान करने से आनन्द की वृद्धि रोगादि की शान्ति, घृत दान करने से तेज की वृद्धि, शर्दी, वमन आदि रोगों की, मधु दान करने से सौभाग्य की वृद्धि, कासस्वास जलोदर आदि की, शक्कर से स्त्री सुख रोगादि की, गुड़ से भस्मकादि रोगों की, तेल से सन्तान सम्बन्धि रोगों की लवण से ऐश्वर्य वृद्धि और मिचली आदि की, फल से संग्रहणी आदि की, वस्त्र दान करने से वस्त्र तथा सौभाग की प्राप्ति और सभी रोगों की, काष्ठदान करने से मंदाग्नि आदि रोगों की शान्ति होती है ।

शंखस्मृति में लिखा है कि—गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य, गंगा और जमुना के किनारे, अयोध्या, अमरकंट, काशी, कुरुक्षेत्र, भृगुतुङ्ग, महालय, ऋषिकूप, गजच्छाया, ग्रहण, इनमें जो दान देता है वह अक्षयफल को प्राप्त होता है ।

गायत्री का माहात्म्य

अथास्याः सविता देवता ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री छन्दः ॐ कार प्रणवाद्याः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ

सत्यमिति व्याहृतयः ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति शिरः। सप्तव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह। ये जपंति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ।१। शतजप्ता तु सा देवी दिनपाप-प्रणाशिनी। सहस्रजप्ता तु तथा पातकेभ्यः समुद्धरेत् ।२। दशसाहस्र जप्ता तु सर्वकल्मषनाशिनी। सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः। सुरापश्च विशुद्ध्येत लक्षजप्यान्न संशयः ।३। प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः। अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ।४। सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश। अपिभ्रूणहनं मासा-त्पुनंत्यहरहः कृताः ।५। हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी। सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला ।६। शान्तिकामस्तु जुहुयात्सा-वित्रीमक्षतैः शुचिः। हंतु कामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा ।७। श्रीकामस्तु तथा पद्मैर्विल्वैः काचनकामुकः। ब्रह्मचर्यसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा ।८। घृतप्लुतैस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्सु समाहितः। गायत्र्ययुत होमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।९। पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते। अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ।१०। गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी। गायत्र्याः परमंनास्ति दिवि चेह च पावनम् ११। हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे। तस्मा-त्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ।१२। उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः। नोच्चैर्जाप्यं बुधः कुर्यात्साविञ्यास्तु विशेषतः।१३। सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः। गायत्री जाप्यनिरतो मोक्षो-पायं च विंदति ।१४। तास्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः। गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ।१५।

शंखस्मृति में लिखा है कि गायत्री का देवता सूर्य, ऋषि विश्वा-मित्र, और गायत्री ही छन्द है, ॐकार प्रणव है, ॐ भूः ॐ भुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं यह सात व्याहृतियाँ हैं। ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्" इस मन्त्र को शिर कहते हैं। जो सर्वदा व्याहृति, प्रणव शिर इनके साथ गायत्री का जप करता है वह कभी भय नहीं पाता। सौ वार गायत्री का जप करने से दिन के पापों से, एकहजार वार गायत्री का जप करने से मानसिक पापों से और दस हजार वार गायत्री का जप करने से सम्पूर्ण पापो से छुट जाता है। सुवर्ण की चोरी करने वाला, ब्रह्म हत्या करने वाला, गुरु की शय्यापर गमन करने वाला, मदिरा पीने वाला यह सब एक लाख गायत्री का जप करने से निस्संदेह शुद्ध हो जाता है। जो मनुष्य स्नान के समय सावधान होकर तीन प्राणायाम करता है वह दिन में किये हुए पापों से उसी समय छुट जाता है। व्याहृति और ॐ कार सहित सोलह प्राणायाम प्रतिदिन करने से एक महीने में मनुष्य गर्भमें हत्याके पाप से भी मुक्त हो जाता है। जो हवन गायत्री से किया जाता है वह सम्पूर्ण मनोरथों का पूर्ण करनेवाला होता है। भक्ति प्रिय और वर की देनेवाली गायत्री सम्पूर्ण पापों को नाश करती है। जो मनुष्य शान्ति की अभिलाषा करे वह पवित्र होकर गायत्री का हवन चावलों से, अकालमृत्यु से वचने के लिये घी से, लक्ष्मी कीइच्छा वाला कमलों से, सुवर्ण की इच्छा वाला बेलों से, ब्रह्मतेज की इच्छा वाला दूध से हवन करे। भलीभांति सावधानी से घी मिले हुए तिलों द्वारा दशहजार गायत्री के हवन करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है।

पापात्मा मनुष्य लाख गायत्री के हवन करने से सब पापों से छूट जाता है तथा मनवांछित लोक में जन्म लेकर अभिलषित फलों को पाता है। वेदों की माता गायत्री है और पापों को नाश करने वाली है। इस लोक और स्वर्ग में गायत्री से परे पवित्र करनेवाला दूसरा नहीं है। जो मनुष्य नरकरूपी समुद्र में पड़े हैं उनका हाथ पकड़ कर रक्षा करनेवाली गायत्री ही है इस कारण नियम पूर्वक ब्राह्मण नित्य गायत्री का अभ्यास करे। उपांशु जप सौगुना फलका देने वाला है और मानस जप हजार गुणा फल देता है। विशेष करके गायत्री का जप मनमें करे। जो मनुष्य गायत्री के जपमें तत्पर हैं वे स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और गायत्री के जप करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस कारण सम्पूर्ण यत्न के साथ स्नान करने के पीछे पवित्र चित्त होकर मनको रोक सम्पूर्ण पापों के नाश करने वाली गायत्री "ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्" का जप करे। गायत्री जपने के उपरान्त गीता, भागवत, रामायण आदि का पाठ, भगवान का नाम स्मरण करे जो मनुष्य नियम पूर्वक भगवान का भजन करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर सुखों को भोगते हुए मोक्ष प्राप्त कर लेता है। नियमों को भ्रष्ट होने पर भी भगवान के भजन करने से स्वर्ग में वास करता है, इसमें सन्देह नहीं। केवल प्रणव के जपने से भी आत्म ज्ञानी हो-कर मोक्ष तथा भूत वर्तमान भविष्य तीनों कालों का ज्ञाता हो जाता है। गृहस्थों को प्रणव के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर उससे व्यापार (लोगों को भूत भविष्य वर्तमान फलों को कह कर अनेकों चमत्कार देखाकर उससे पैसा कमाना इत्यादि व्यापार) करना नहीं चाहिये क्योंकि प्रणव के

द्वारा सिद्धि प्राप्त कर उससे व्यापार करने से सन्तानादि सुखोंमें बाधा होती है। श्री बीज (श्रीं) का जप करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। गृहस्थों को श्री बीज का पुरश्चरण और जप नित्यप्रति अवश्य करनी चाहिये। गृहस्थों को संध्या और गायत्री का जप कम से कम १०८ बार प्रातःकाल १०८ बार सायंकाल, नित्यप्रति अवश्य करना चाहिये। संध्या तीन होती है, प्रातः, मध्याह्न, सायं आदि तीनों कालों में हो सके तो सबसे श्रेष्ठ है। तीनों काल न हो सके तो प्रातः और सायं दो कालों में करे, दो भी न हो सके तो प्रातःकाल की संध्या अवश्य करनी चाहिये। तीन दंड रात्रि शेष रहने से तीन दंड दिन उठने तक प्रातः संध्या और तीन दंड दिन शेष रहने से तीन दण्ड रात्रि बीतने तक सायं संध्या होती है।

नाम का माहात्म्य

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गति गम्यथाम्॥
श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजा भुवि।
तेषां नास्ति भयं पार्थ रामनाम प्रसादतः॥
प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टो रामनाम दहेदघम्॥
सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्।
शुद्धान्तः करणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥

नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्ध चौरः कथितः पृथिव्याम् ।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं हरत्यशेषं स्मृतमात्रएव ॥
सप्तकोटिमहामंत्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो राम इत्यक्षर द्वयम् ॥
दैवाच्छू करशावकेन निहतो म्लेच्छो जरा जर्जरो ।
हा रामेति हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान् ॥
तीर्णो गोपदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावात् पुनः ।
किं चित्रं यदि रामनामरसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥

भगवान का नाम ही मेरा जीवन है कलिके पापों से उद्धार होने का सबसे सुन्दर रास्ता है, अर्थात् नाम जपनेसे उद्धार होता है। आदि पुराण में कृष्ण का वाक्य है कि जो मनुष्य श्रद्धा से वा अश्रद्धा से भी पृथ्वीतलपर नाम लेते हैं, हे पार्थ उनको राम के नाम के प्रभाव से कुछ भय नहीं होता। प्रमाद से भी स्पर्श किया गया अग्नि का कण जैसे जला देता है वैसेही होठसे लगते ही राम का नाम पापों को नाश करता है। पद्मपुराण में लिखा है कि रामनाम सर्वोपरि है जो इसको शुद्ध मन से एकबार भी उच्चारण करे तो मोक्ष को प्राप्त होता है। प्रपन्न-गीता में कहा है कि मनुष्यों में नारायणनाम पृथ्वी पर प्रसिद्ध चौर कहा गया है क्योंकि स्मरणमात्र से अनेक जन्मों के इकट्ठे हुये पापों के समूह को हर लेता है। सात कोटि बड़े-बड़े मन्त्र सब भ्रम करने वाले हैं पर "राम" इन दो अक्षरों का मन्त्र सर्वोपरि है। बाराह पुराण में लिखा है कि दैवयोग से शूकर से मारा गया म्लेच्छ भी मरती समय "हा राम राम" ऐसा कहता हुआ भूमि पर गिरकर प्राण छोड़े तो वह रामनाम के

प्रभावसे संसारसागर को गौ के खुर के समान पार कर जाता है। यदि भगवान का नाम प्रेम से ले तो उसकी गति क्यों न होगी अर्थात् अवश्य होगी।

रकारोऽनलवीजंस्यात् जे सर्वे वड़वादयः।
कृत्वा मनोमलं सर्वं भस्मकर्म शुभाशुभम्।१।
अकारो भानुवीजं स्यात् वेद शास्त्र प्रकाशकः।
नाशयन्त्येव सो दीप्त्या हृत्स्थमज्ञानजं तमः।२।
मकारश्चन्द्रवीजं स्याद्यदपां परिपूरणम्।
त्रैतापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च।३।
वैराग्य हेतुः परमो रकारः कथ्यते बुधैः।
अकारो ज्ञान हेतुश्च मकारो भक्ति हेतुकः।४।

रकार अग्नि का वीज है इसलिये शुभाशुभ कर्मों को भस्म कर देता है। आकार सूर्य का वीज है मोहान्धकार को नाश कर देता है। मकार चन्द्रमा का वीज है तीन प्रकार के संतापों को मिटाकर शीतल कर देता है। रकार वैराग्य, आकार ज्ञान, मकार भक्ति का हेतु है क्योंकि, रकार कर्मवासनारूपी काठ को भस्म करने के लिये अग्नि रूप है; आकार मोह रूपी अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य रूप है; मकार जीव का संताप मिटाकर शीतल करने के लिये चन्द्र रूप है। अध्यात्मरामायण में लिखा है—अहो भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव राम नाम। महादेव जी रामचन्द्र से कहते हैं कि मैं आपका नाम जपता हुआ पार्वतीजी सहित काशी में रहता हूं और मरते हुये

प्राणी को मुक्ति के लिये हे राम आपका नाम मैं उसे उपदेश करता हूं। काशी खंड में लिखा है—पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्। जल्पन् जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिना कर्णमूले वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोपि काशीनिवासी। कोई काशी निवासी जटाधारी प्राणियों के कान में गली-गली यह कहता फिरता है कि सुन्दर रामनाम वारंवार सुनना चाहिये और मन में वारंवार निरंतर उसी का ध्यान करना चाहिये जो कि तारक मंत्र के समान है और साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। श्रीमद्भागवत में लिखा है—कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्। कलियुग में केवल भगवान कृष्ण का कीर्तन मात्र करने से ही मनुष्य मुक्तसंग होकर परम पद को प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत माहात्म्य में लिखा है—यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना। तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशव कीर्तनात्। तप, योग, यज्ञ और समाधि से अन्य युगों में जिस फल का लाभ होना अति कठिन होता है वह फल कलियुग में केवल केशव भगवान् के कीर्तन से मिल जाता है।

नाम का प्रयोग

नाम का महात्म्य सभी युगों में है। भगवान् का जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, और नाम जपने से सभी तापों से मुक्त होकर जीवन में भुक्ति शरीर त्यागने पर मुक्ति मिलती है। नीचे लिखे प्रयोगों से रोगादि की शान्ति होती है।

चर्म रोग—स्नान के समय अंगोछे पर राम-राम लिख कर अंगों को पोछने से शिहुलादि चर्म रोगों की शान्ति होती है।

भूत प्रेत बाधा में—नारायण ब्रह्म से, [illegible] मंत्र से, जपने से गायत्री कवच धारण करने से भूत प्रेत बाधा दूर होकर रोगादि की शान्ति होती है।

मूर्छा मृगी रोग में—गायत्री कवच या भगवान् का अष्टाक्षर मंत्र से यंत्र बना कर धारण करने से शान्ति होती है। रोगी के नाम भगवान् के नाम से संपुटित कर धारण करने से भी आरोग्य होंगे। उजला भोजपत्र पर अष्टगंध से लिखें।

ज्वरादि शान्ति के लिये—ज्वरयुद्ध, नारायणवर्म, गजेन्द्र मोक्ष सुनने पाठ करने से और त्रिविध ताप दुखताप नशावन, कलि कुचालि कलि कलुष नशावन, इस चौपाई के जपने से ज्वरादि की शान्ति होती है।

तिजरा में—कोटि पंचशत मर्कट, रहत सर्वदा साथ, कालहु ते रण में लड़हि कुमुद आदि पति नाथ, इसको जपने से, और कु जपने से भी शान्ति होती है।

नेत्र रोग—प्रातः नाम से जल को मंत्रित कर या गायत्री मंत्र से मंत्रितकर आँखों पर छिटा देने से शान्ति होती है।

पुत्रप्राप्ति—रामसन्तान, गोपालसन्तान, शिवसन्तान के जपने से और एक वार भूपति मन माही. भयउ गलानि मोरे सुतनाही। यहां से प्रारम्भ कर उत्तर कांड तक पढ़ के बाल कांड से सुरु करके कौशल्यादिक नारी सब सब आचार पुनीत, पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरिपद कमल विनीत।—तक समाप्त करें। भागवत सुखसागर में कृष्ण जन्म नित्य नियम पूर्वक पढ़ने

से भी पुत्र की प्राप्ति होती है। इसमें से किसी एक को नियम पूर्वक करने से सन्तान की प्राप्ति होती है।

जल वर्षा के लिये—वेदों में मंत्र है उससे या सोजल अनल अनिल संघाता, होई जलद जग जीवन दाता—इसके प्रयोग से वृष्टि होती है।

विघ्न विनाश—सकल विघ्न व्यापे नहिं ताही, राम कृपा करि चितवही जाही। इसके जपने से या भगवान् के नामों के (विष्णु सहस्र नाम) पाठ करने से शान्ति होती है।

विपद नाश—राजिवनैन धरेधनुशायक, भक्त विपती भंजन सुखदायक नियम पूर्वक जपने से विपद विनाश होकर सुख शान्ति होती है।

विष नाश—नाम प्रताप जानु शिव नीके, काल कुट फल दीन्ह अमीके। इससे जल मंत्रित कर पीने से और पढ़ने से विष नाश होता है।

विषय वासना शान्ति—मनकरि विषय अनल तन जरई, होय सुखी जो यह सर परई। इसके जपने से विषय वासना की शान्ति होती है।

सुख सम्पत्ति—जे सकाम नर सुनहि जे गावहि, सुख सम्पत्ति नाना विधि पावहिं। इससे सुख सम्पत्ति मिलती है।

रक्षा—मामभिरक्षय रघुकुल नायक धृतवर चाप रुचिर कर शायक। मोरे हित हरिसम नहिं कोई यहि अवसर सहाय सो होई। इससे रक्षा होती है।

दुष्टदलन—जो अपराध भक्त कर करई, राम रोष पावक सो जरई।

दुष्ट से मिलाप—गरल सुधा रिपु करै मिताई, गोपद सिन्धु अनल सित- लाई। इसके जपने से मिलाप होता है।

रण में विजय—रिपु रण जीति सुजस सुर गावत, सीता अनुज सहित प्रभु आवत। इसके जपने से विजय होता है।

मोहन के लिये—करतल वाण धनुष अति सोहा, देखि रूप सचराचर मोहा। इसके जपने से मोहन होता है।

बशीकरण—जन मन मंजु मुकुर मल हरणी, किये तिलक गुणगण बस करणी। इससे बशीकरण होता है।

अल्प मृत्यु निवारण—पाहि पाहि रघुवीर गोसाईं, यह खल आवत काल की नाईं। अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा, सब सुन्दर सब विरुज शरीरा। नाम पहरुआ दिवस निशि ध्यान तुम्हार कपाट; लोचन निज पद यंत्रिका, प्राण जाहि केहि वाट। इसके जपने से अल्प मृत्यु का नाश होता है।

भागवतादिपुराणों में, रामायण में, अनेको प्रयोग लिखे हैं। सभी कार्य सिद्ध होने का प्रयोग भिन्न २ वर्णन किया हुआ है देख कर कार्य के अनुकूल प्रयोग करना चाहिये। ऊपर जो लिखा है उसका जप पाठ करने से या संपुटित कर रामायण आदि का पाठ पुरश्चरण के विधि से करने से कठिन से कठिन कार्य की सिद्धि होती है।

वैदिक सिद्धान्त

१ अर्थ—जो धर्मानुष्ठान से उपार्जन किया जाय सो अर्थ है इसके विपरीत अनर्थ है।

२ अवस्था—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, ये चार हैं।

३ अविद्या—ईश्वर की मोह शक्ति।

४ अष्टसिद्धि—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वसित्व।

५ अग्नित्रय—दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय।

६ अनादि—ईश्वर हैं, उसकी अनन्त सामर्थ्य से सब जगत प्रकृति सन्निहित उत्पन्न होता है।

७ अनायास—शुभाशुभ कर्मों को अत्यन्त न करना।

८ अनसूया—गुणवान् मनुष्यों को गुणों को नष्ट न करना गुणों की प्रसंशा करना, और दूसरे के दोषों को देखकर उपहास न करना।

९ अस्पृहा—जो कुछ भी मिल जाय उसी से संतुष्ट रहना और पराई स्त्री की अभिलाषा न करना।

१० आर्य—आर्यावर्त के रहने वाले तथा श्रेष्ठ पुरुष को कहते हैं।

११ आप्त—जिसके वाक्य में कभी सन्देह न हो, सदा यथार्थ बोले।

१२ आर्यावर्त्त—विंध्याचल और हिमालय के बीच को कहते हैं।

१३ आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यस्त (संन्यास) ४ हैं।

१४ आभरण—नूपुर, चूड़ी, हार, कंकण, अङ्गुठी, बाजूबन्द, बेसर, बिरिया, टीका, शीशफूल, तागड़ी, कन्ठश्री ये १२ हैं।

१५ आकर—जरायुज, अन्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, ये चार हैं।

१६ ईश्वर—माया से परे निर्विकार, निराकार, साकार और सर्व शक्तिमान है, महिमा वेद शास्त्र पुराणों से जानी जाती है।

इसका भेद मनुष्य नहीं जान सकते ।

१७ इष्ट—अग्निहोत्र, तपस्या, सत्य में तत्पर, वेद की आज्ञा पालन, अतिथियों का सत्कार और वैश्वदेव ।

१८ उपासना—मूर्ति में ईश्वर का अर्चन करना ।

१९ ऋतु—शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त ६ हैं ।

२० कला—६४ हैं ।

२१ कल्प—चार युगों की एक चौकड़ी, हजार चौकड़ी का एक कल्प ।

२२ काम—अर्थ और धर्म से जो प्राप्त किया जाय, सो काम है ।

२३ गुण—सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ३ हैं ।

२४ गुरु—माता, पिता, शीक्षागुरु और दीक्षागुरु (आचार्य) ।

२५ चतुर्गुण—साम, दाम, दंड, भेद ।

२६ चतुर्युग—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ।

२७ चतुर्वर्ग—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ।

२८ चार रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह ।

२९ चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ।

३० जीव—जो कर्मबन्धन से युक्त है वह जीव, कर्मबन्धन से छूटने पर आत्मा की जीव संज्ञा नहीं रहती । जब यथार्थ ज्ञान होता है तब जीव ईश्वर का भेद मिट जाता है ।

३१ तप—वन पर्वतों में कुटी बनाकर परमेश्वर की प्रसन्नता के हेतु जितेन्द्री होकर जो अनुष्ठान किया जाता है उसे तप कहते हैं ।

३२ तीर्थ—गंगादि नदी, पुष्कर राज आदि सरोवर, काशी, अयोध्या

आदि, जिनके दर्शन से पाप सब दूर हो जाते हैं।

३३ तीन अवस्था—बाल, युवा, वृद्ध।

३४ तीन इषणा—लोक बड़ाई, धन राज्यादि, स्त्री पुत्रादि।

३५ त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

३६ त्रिताप—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक।

३७ त्रिविध कर्म—संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण।

३८ त्रिविध श्रोता—मुक्त, मुमुक्षु, विषयी।

३६ त्रिविध समीर—शीतल, मंद, सुगन्ध।

४० दम—कोई मनुष्य कष्ट देवे तो उस पर क्रोध न करना, अथवा उसकी हिंसा न करना।

४१ दया—दूसरे के प्रति, माता, पिता आदि कुटुम्बियों के प्रति, मित्रों के प्रति, वैर करने वालों के प्रति, अपने शत्रु के प्रति, समान व्यावहार करना।

४२ दान—किञ्चित्प्राप्ति होने पर भी उसमें से थोड़ा २ प्रतिदिन प्रसन्न मन से, देश, काल, पात्र, विचार कर धर्म पूर्वक, अथवा जैसे हो दूसरे को देना।

४३ दिक्पाल—पूर्व आदि से लेकर क्रमशः इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर, अग्नि, राक्षस, वायु, शिव ये ८ हैं।

४४ द्वीप—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, पुष्कर, शाल्मली, गोमेद।

४५ धर्म—जिसकी वेदादि शास्त्रों में विधि है वह धर्म, और जिसका निषेध है वह अधर्म है।

४६ नरक—२८ हैं।

४७ नवगुण—(ब्राह्मण के) धृति, क्षमा, दम, स्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य ।

४८ नवखंड—इलावृत्त, रम्यक, हिरण्यमय, कुरु, हरि, भारत, केतुमाल, भद्राश्व, किंपुरुष ।

४६ नियम—शौच, पञ्चयज्ञ का अनुष्ठान, तपस्या, दान, स्वाध्याय, विधि रहित रति का त्याग, व्रत, मौन, उपवास, और स्नान ।

५० पंचतत्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ।

५१ पंचपवन—प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान ।

५२ पंचदेव—गणेश, शिव, विष्णु, सूर्य, दुर्गा ।

५३ पंचयज्ञ—वेदादिपाठ, तर्पण, होम, वलि वैश्वदेव, अतिथि सत्कार ।

५४ पाप-पुण्य—पराया को पीड़ा देना पाप और परोपकार करना पुण्य है ।

५५ पुराण—१८ हैं ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, श्रीमद्भागवत, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्त, लिंगपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुडपुराण, ब्रह्माण्डपुराण ।

५६ पूजा—देवता, माता, पिता, आचार्य (गुरु), भी अतिथि ईश्वर की ।

५७ पूर्त—बावड़ी, कूप, तालाव, इत्यादि जलाशयों को बनवाना, देवताओं की प्रतिष्ठा, वगीचों का लगाना और अन्नादि दान ।

५८ प्रमाण—प्रत्यक्षादि ८ हैं ।

५९ भक्त—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, विज्ञान, निवास।

६० भक्ति—९ प्रकार की है। श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वन्दन, चरण-सेवा, स्मरण, आत्म निवेदन, दासत्व, सख्य।

६१ मद—जातिमद, कुलमद, युवावस्था का मद, रूपमद, ज्ञानमद, ध्यानमद, धनमद, राज्यमद।

६२ मंगल—उत्तम कर्मों का आचरण और निन्दित कर्मों का त्याग। अर्थात् हिताभीष्ट सिद्धिर्मंगलम्।

६३ मुनि—शाक, पत्ते, फल, मूल को भक्षण करनेवाला, वन में निवास कर नित्य श्राद्ध में रत रहता है ऐसे ब्राह्मण को मुनि कहते हैं।

६४ मुक्ति—संपूर्ण कर्म और वासनाओं के क्षय होने से मुक्ति होती है।

६५ विद्या—१४ हैं। ब्रह्मज्ञान, रसायन, वेद, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, जल में तैरना, संगीत, नाटक, खेलना, अश्वारोहण, कोकशास्त्र, कृषी, न्याय।

६६ विवाह—८ हैं। ब्रह्मविवाह, प्राजापत्यविवाह, आर्षविवाह, दैवविवाह, गांधर्वविवाह, आसुरविवाह, राक्षसविवाह, पैशाचविवाह।

६७ वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

६८ वेदांग—६ हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्र उच्यते। शिक्षा घ्राणंतु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।

६६ यम—अक्रूरता, क्षमा, सत्य भाषण, अहिंसा, दान, सरलता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता, मृदुता ।

७० योनि—८४ लाख हैं । ६ लाख जलचर, ४ लाख मनुष्य, २० लाख स्थावर, ११ लाख कृमि, १० लाख पक्षी, ३० लाख चतुष्पद ।

७१ योग—चित्त को एकाग्र करने का नाम योग है ।

७२ राम—परशुराम, रामचन्द्र, वलराम ।

७३ लोक—१४ हैं । तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, भूर्लोक, भूवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक ।

७४ शास्त्र—६ हैं । सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, न्याय और वैशेषिक ।

७५ शृंगार—१६ हैं । अंगशुचि, मज्जन, दिव्य वस्त्र, महावड, केशसंस्कार, सिंदुर लगाना, ठोडी पर तिल, माथे में विन्दी, मेंहदी, अरगजा, भूषण, सुगन्ध, मुखराग, दंतराग, अधरराग, काजल ।

७६ शौच—अभक्ष्य वस्तु का त्याग, श्रेष्ठ का संसर्ग, शास्त्रोक्त आचारों का पालन ।

७७ षटरस—कटु, तीक्ष्ण, अम्ल, मधुर, कषाय, लवण ।

७८ सप्तर्षी—वसिष्ठ, अत्रि, कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, गौतम ।

७९ सप्तावरण—जल, पवन, अग्नि, आकाश, अहंकार, महातत्व, प्रकृति ।

८० स्तुति—परमेश्वर के गुण प्रभा का वर्णन कीर्तन ।
८१ स्वतंत्र—ईश्वर सदा स्वतन्त्र हैं ।

स्तोत्र—स्तोत्रं कस्य न तुष्टये

(काली दासः)

भगवतः करुणानिधेः कृपालेशेनापि पुरुषार्थचतुष्टयस्य प्राप्तिर्भवतीत्यत्र न कस्यचिद्विप्रतिपत्तिः । तत्कृपासंपादनोपायाश्च यागादयो ध्यानधारणादयश्च सन्ति भूयांसः । ते चास्मिन्घोरतरे कलिकालेऽल्पशक्तिभिरल्पायुर्भिर्मलिनमानसैर्मानुषैरसुकरा इति पश्यद्भिर्महद्भिः परमेश्वरे भक्तिरेवात्र कलौ तत्प्रीतिहेतुरित्युपदिश्यते । सा च नवविधा श्रीमद्भागवते सप्तमस्कन्धे श्रीमता प्रह्लादेनोक्ता । तत्र कीर्तनरूपा द्वितीया विधा भगवत्स्तुतिरूपा । तामेव स्तोत्रपाठमाचक्षते । अयं च लघुतरोपायः सर्वैः सुखेनानुष्ठातुं शक्यः । किंच स्तोत्राणां विविधेषु छन्दसु ग्रथितत्वेन सुललितपदत्वेनानतिविस्तृतत्वेन भगवल्लीलाप्रचुरत्वेन केषांचित्संसारासारतोपदेशपरत्वेन केषांचित्तत्त्वज्ञानोपदेशपरत्वेन केषांचिद्भगवत्सौन्दर्यवर्णनपरत्वेन विभिन्नास्वप्यवस्थासु चेतोह्लादकतासर्वैरप्यनुभूतैव । नात्र विशेषलेखनेन किंचित्प्रयोजनम् । तदेवं स्तोत्राणां सर्वैरभिलषितत्वात्सर्वेषां तत्सौलभ्यार्थं मानसिकस्नानादि स्तोत्राः लिखिताः ।

मानसिक स्नान

चतुर्भुजं महाकायं शङ्खचक्रगदाधरम् । ध्यायीत मनसा विष्णुं मानसं स्नानमुच्यते ॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ प्रातःकाल (चारदंड रात बाकी रहे) उठकर भगवान का स्मरण करने से बाहर और भीतर की शुद्धि होती है, इसलिये नित्यप्रति प्रातःकाल स्मरण करना चाहिये ।

प्रातः स्मरण

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम्। यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ।१। प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं वाचो विभान्ति निखिलायदनुग्रहेण। यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचुस्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ।२। प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्। यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ रज्ज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै ।३। श्लोक त्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम्। प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ।४। इति। इस श्लोक को प्रातः उठकर पढ़ने से परमपद प्राप्त होता है, इसलिए नित्य प्रातः काल पढ़ना चाहिये।

चतुश्लोकि भागवत

श्री भगवानुवाच। ज्ञानं परमगुह्यंमे यद्विज्ञानसमन्वितम्। स रहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ।१। यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः। तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ।२। अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ।३। ऋतेर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ।४। यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ।५। एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासुनाऽऽत्मनः। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ।६। एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना। भवान्कल्प विकल्पेन न विमुह्यति

कर्हिचित् ।७। इति श्री मद्भागवते चतुःश्लोकि भागवतं समाप्तम् ।
चतुश्लोकी भागवत का पाठ नित्य प्रति करना चाहिये ।

सप्तश्लोकी गीता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।१। स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च । रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यंति च सिद्धसंघाः ।२। सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।३। कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः । सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णतमसः परस्तात् ।४। उर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहु रव्ययम् । छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।५। सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तःस्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च । वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्योवेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।६। मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः ।७। इतिश्री सप्तश्लोकी गीता सम्पूर्णा । सप्तश्लोकी गीता का पाठ नित्य प्रति करना चाहिये ।

अच्युताष्टक

श्रीगणेशायनमः । अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् । श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ।१। अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम् । इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दजं संदधे ।२। विष्णवे जिष्णवे शंखिने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये ।

वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने कंसविध्वंसिने वांशिने ते नमः ।३। कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे। अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज द्वारकानायक द्रोपदीरक्षक ।४। राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः। लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितोऽगस्त्यसंपूजितो राघवः पातु माम् ।५। धेनुकारिष्टकोऽनिष्टकृद्द्वेषिणां केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः। पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो बालगोपालकः पातु मां सर्वदा ।६। विद्युदुद्योतवान्प्रस्फुरद्वाससं प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम्। वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं लोहितांघ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे ।७। कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुंडलं गण्डयोः। हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे ।८। अच्युतस्याष्टकं यः पठेदिष्टदं प्रेमतः प्रत्यहं पुरुषसस्पृहम्। वृत्ततः सुन्दरं कर्तृ विश्वम्भरं तस्यवश्यो हरिर्जायते सत्वरम्। इतिश्री अच्युताष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम्। अच्युताष्टकस्तोत्र को नित्यप्रति पढ़ने से भगवान प्रसन्न होकर इच्छित फलों को देते हैं, इसलिये नित्यप्रति पाठ करना चाहिये।

युगध र्म का माहात्म्य

युगधर्ममिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः ।१।
युगाध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च ।२।
मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने।
सकृद्युगाम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ।३।

शोक मोह हरं पुसामृषिभिः परिकीर्तिमम् ।
युगधर्मोदकं पंठत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।४।

युगधर्म के अनुकूल कर्मों को करने पढ़ने सुनने और पाठ करने से पुनर्जन्म नहीं होता, इस लिये युगधर्म के अनुकूल कर्मों को करना चाहिये।

ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्य्यं करवावहै तेजस्विना वधीतमस्तुमाविद्विषावहै ।

ॐ शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु सर्वारिष्ट शान्तिर्भवतु ।

हरिः ॐ तत्सत् ।

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
उत्पन्त	उत्पन्न	८	११	विद्याज्जाने	विद्याज्ज्ञाने	३४	२
ताम्रपात	ताम्रपात्र	२२	३	कौलगाश्च	कौलंगाश्च	,,	२०
नाम	ना	२५	२	पयस्विनी	पयस्विनीः	,,	२०
धम	धर्म	२६	६	नानान्दश्याल	नानादृश्याल	,,	२२
गमन	गमनं	,,	१३	स्त्रणाः	स्त्रैणाः	,,	२२
पलपेत्टकम्	पलपैत्टकम्	,,	१५	दंवंण	दुर्वंण	३५	१८
कलेयदा	कलेर्यदा	,,	२२	केशव	केशवम्	३६	१
धर्मो	धर्मों	३०	१०	प्रियमाणो	म्रियमाणो	,,	२
अश	अंश	३१	४	स्थान	स्नान	४०	५
प्राप्नाति	प्राप्नोति	,,	१३	वह	वहु	४१	२१
वजेत्	व्रजेत्	,,	२२	छशहूं	दशहूं	४३	२०
भगवान्	भगवन्	३२	२२	आर	और	४४	४
श्रवणा	श्रमणा	३३	८	साभागिनी	सौभागिनी	४५	२१
हिंस्त्रा	हिंस्रा	,,	११	सन्यासी	संन्यासी	४६	१२
वर्णा	वर्णा	,,	१२	चोरिहिं	चेरिहिं	४७	१
महाशाला	महाशीला	,,	१५	मुक्त	मुक्त	५४	१३
रजस्तत	रजस्तम	,,	२१	यग	यज्ञ	,,	१७
पंरिवर्तन्त	परिवर्तन्त	,,	२२	ओंकायूप	ओंकारयूप	५७	११
सन्त्वे	सत्त्वे	३४	१	हवेगा	होवेगा	५८	१७

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
माना	मना	६०	४
कलो	कलौ	,,	१४
तुम्हकां	तुम्हको	६१	३
अश	अंश	,,	२१
प्रकीर्तिताः	प्रकीर्तितः	७२	१४
कम	कर्म	७७	१६
द्दष्टिपूतां	द्दष्टिपूतं	८३	१६
तुवा	तुंवा	८६	२१
वे	के	८७	१६
रूण	रूप	,,	१७
व्याख्यान	व्याख्यानं	८८	१४
प्रपंचस्तु	प्रपंचास्तु	,,	१५
निरेध	निरोध	८६	२
स	से	६२	१७
हंतु	हुंतु	६४	११
काचन	कांचन	,,	१२
परम	परमं	,,	१६
मनुप्य	मनुष्य	६५	१४
दहेदद्यम्	दहेदघम्	६७	२०